तृतीय अध्याय

अनामिका, स्त्री मुक्ति के प्रश्न और स्त्रीत्व का मानचित्र

आधुनिक युग में स्त्री विमर्श, स्त्री मुक्ति, नारीवाद, नारी सशक्तिकरण का शोर चारों तरफ है। वर्षों से होते आए शोषण और दमन के प्रति स्त्री चेतना ने ही स्त्री विमर्श को जन्म दिया है। अनामिका कहती हैं कि 'स्त्री विमर्श किस चिड़िया का नाम है।' स्त्री विमर्श यानी स्त्री की आत्म चेतना, आत्म सम्मान, आत्म गौरव, समता और समानाधिकार है। स्त्री विमर्श से पहले महिलाएँ केवल अपने साज-श्रृंगार और सौंदर्य प्रसाधनों पर ही ध्यान देती थी। स्वाधीनता प्राप्ति के बाद स्त्री विमर्श ने अपने पंख फैलाए हैं।

"हिन्दी में स्त्री विमर्श का प्रारंभिक रूप सन् 1882 ई. में एक अनाम लेखिका द्वारा रचित 'सीमंतनी उपदेश' में देखा जा सकता है। इसी वर्ष ताराबाई शिंदे की पुस्तक 'स्त्री-पुरूष तुलना' का भी प्रकाशन हुआ, जिसमें प्रकाशन के महिने का कोई जिक्र नहीं होने से फरवरी में प्रकाशित 'सीमंतनी उपदेश' को डाॅ. धर्मवीर ने हिन्दी ही नहीं, भारत की पहली स्त्री-विमर्श की पुस्तक माना है। ऐतिहासिक दृष्टि से यह स्त्री चेतना का जागरण काल था, जब पहली बार स्त्रियाँ अपनी दयनीय स्थिति के प्रति जागरूक होती हंै और समूचे देश में जागृति की एक लहर व्याप्त हो जाती है।' ' 1

सन् 1942 में महादेवी वर्मा की 'श्रृंखला की कड़ियाँ' का प्रकाशन होता है। स्त्री चेतना भारत में 20वीं सदी के अंतिम चरण में प्रखर होती है। सन् 1996 में पृणाल पांडे की 'परिधि पर स्त्री' प्रकाशित होती है। क्षमा शर्मा की 'स्त्री का समय' सन् 1998 में प्रकाशित होती है। सन् 1999 में अनामिका की स्त्री विमर्श की पुस्तक 'स्त्रीत्व का

मानचित्र प्रकाशित होती है। इस पुस्तक को सही अर्थों में 'स्त्रीत्व का मानचित्र' कहा जा सकता है क्यांेकि इस पुस्तक में हिन्दी व पाश्चात्य साहित्य की पुस्तकों के अध्ययन व चिंतन-मनन के उपरान्त इस पुस्तक का लेखन हुआ है। इस पुस्तक में अनामिका ने पाश्चात्य साहित्य, वैदिक ग्रंथों, लोकसाहित्य, दार्शनिक ग्रंथों आदि का संकलन किया है। 'स्त्रीत्व का मानचित्र' पुस्तक में आठ महत्वपूर्ण लेख तथा परिशिष्ट में पाँच लेख और भी हैं।

पंकज बिष्ट कहते हैं कि ''ऐसे समाजों में जो अभी अपने सामंती दौर में पूरी तरह उबरे न हों, नारी स्वातन्त्रय की अवधारणा चैकानेवाली न हो तो भी परेशान करने वाला विषय तो है ही। सही है कि नारीवादी चिंतन मूलतः पश्चिम की देन है पर पश्चिम से आने मात्र से किसी भी चीज को खारिज नहीं किया जा सकता।' ' 2

अनामिका ने अपनी पुस्तक 'स्त्रीत्व का मानचित्र' में स्वयं कहा है कि ''स्त्रीत्ववादी आंदोलन धनी महिलाओं का वाग्विलास भर नहीं है। स्त्रीत्ववाद को उछल-कूद के निरे प्रतिक्रियावाद से जोड़कर देखना भी एक गहन राजनीतिक षड्यन्त्र है जिससे हम आज तक नहीं उबर पाए।' ' 3

'स्त्रीत्व का मानचित्र' पुस्तक में तेरह अध्याय हैं- स्त्री आंदोलन अहं से वयं की राजनीतिक यात्राएँ, पश्चिमी दार्शनिक निकाय: चुप्पियाँ और दरारें, भारतीय आर्ष ग्रन्थ और 'स्त्री' , लोकसाहित्य का वातायन और स्त्री, स्त्रीवादी आलोचना: मुख्य अवधारणाएँ और मानक ग्रंथ भारत के स्त्री-केन्द्रित आंदोलन: उपलब्धि और सीमाएँ, भारतीय साहित्य: अंतः सलिला का महोच्चार, समन्वित नारीवाद और भारतीय देवियाँ-स्त्रीत्व और भाषा, स्त्री कथाकारों की स्त्रियाँ, तीसरी दुनिया: एक स्त्री का

अंतर्जगत् बनाम बहिर्जगत्, मुक्त करती हूँ मेरे भीष्ण भय, कुछ सामयिक प्रकाशन स्त्री सापेक्ष छिटपुट टिप्पणियाँ, संक्रमणशील भारतीय समाज और स्त्री, उत्तरवाद और साहित्य अध्ययन की चुनौतियाँ आदि।

3.1 भारतीय संस्कृति और स्त्रीत्व का मानचित्र

भारतीय संस्कृति में ऐसी परम्पराएँ मिलती हैं जो समाज में स्त्री की प्रतिष्ठा का परिचायक हैंे। प्राचीन में ऐसे संकेत मिलते हैं कि पर्दा प्रथा व सती प्रथा का प्रचलन नहीं था। विधवा पुनर्विवाह भी प्रचलित था। ऋग्वेद संहिता मे राजा बेन का उल्लेख मिलता है, जिनके बारे में मनु ने लिखा है कि विधवाओं का पुनर्विवाह करवाया जाता था। बाल विवाह का भी उल्लेख नहीं मिलता। प्राचीन काल में अपना जीवनसाथी चुनने की भी स्वतंत्रता होती थी।

''भारतीय संस्कृति आरम्भ से ही सामासिक रही है। समन्वय ही इसका प्राण है। भारत की मानसिकता अत्यन्त प्राचीनकाल से ही दो धाराओं में विभक्त रही है। वास्तव मंे यह समन्वय वैचारिक स्तर पर परस्पर दो विरोधी विचारधाराओं के द्वन्द्व घात-प्रतिघात की देन है जिसमें एक अंश वर्ण व्यवस्था का समर्थक है और दूसरा विरोधी।'' 4

भारतीय धार्मिक ग्रन्थों में अनामिका ने विदुषी स्त्रियों की परम्परा व उनके तेजस्वी उद्धरणों को प्रस्तुत किया है जो विदुषी स्त्रियांे, ऋषि कन्याओं के स्वतंत्र व तेजस्विता के परिचालक हैं। प्राचीन ग्रंथों में किसी भी प्रकार की पुरुषों व स्त्रियों में आत्महीनता व दैन्यभाव नहीं दिखता है। वैदिक काल में नारी का स्थान सम्मानजनक था। इस काल में स्त्रियों ने ऋग्वेद की रचनाएँ लिखी, वेद पढ़े और अपने पतियों के साथ

धार्मिक कर्मकाण्डों में भाग लिया। वैदिक काल में खासतौर से पूर्व वैदिक काल में स्त्रियों की बेहतर स्थिति मानने के दो कारण हैं, एक तो प्राचीन काल में स्त्रियों को शिक्षा प्राप्त करने का अधिकार था और दूसरा यह कि धार्मिक कर्म-काण्ड में स्त्रियाँ पुरुषों के साथ समान रूप से भाग लेती थी। संस्कृति और सभ्यता का संबंध नारी से ही है। धर्म तथा नैतिक नियमों के पालन का श्रेय भी नारी को ही जाता है।

प्राचीन संस्कृति की विशेषता है कि अनुकूल माहौल स्थापित करने की जिम्मेदारी केवल वर से ही नहीं बल्कि पूरे परिवार से की गई है। घर के प्रत्येक व्यक्ति से यह आशा की जाती है कि स्त्री को घर में उचित परिवेश मिले। अनामिका विदुषी 'घोषा' का उदाहरण प्रस्तुत करती हैं जो अश्विनी कुमारों से घर के अनुकूल परिवेश के लिए प्रार्थना करती हुई कहती हैं-

''जीवं रूदन्तिवि मन्यन्ते अध्वरे दीर्घामनु प्रसीति दीधियुनरः

वामं पितृभ्यों य इदं समेरिरेमयः पतिभ्योंः जनयः परिष्वजे।

(जब भी कोई ब्रह्मवादिनी, ब्रह्मचारिणी नारी लक्षणों से सम्पन्न होकर कमनीय वर की इच्छा करें, उसे उसकी मनोदशा के अनुकूल वर मिले। पति के घर वधू को जीवन के सभी साधन सुलभ रहें और सदा उस गृह में दया, परोपकार, उदारता और शालीनता आदि गुण नदी के प्रवाह की तरह गतिशील बने रहें।)''5

प्राचीन काल में पर्दा प्रथा भी नहीं थी, अनामिका ने इसका संकेत सूर्या सूक्त की तैंतीसवीं ऋचा के माध्यम से बताया है, जहाँ वर स्वयं अपनी पत्नी को देखने का आग्रह करता है।

‘ ‘सुमड्.लीरियं वधूरिमां समेत पश्यत।’ ’ 6

सास-ससुर के साथ बहुएँ भी एक ही थाली में खाती थी इसका भी प्रमाण अट्ठाइसवें सुक्त में हैं।

‘ ‘विश्व ह्यन्योंअरिराजगाम ममेदह श्वसुरों नाजगाम।’ ’ 7

अर्थात् सब देवता मेरे यज में आ गये हैं, किन्तु अभी तक मेरे ससुर इंद्र नहीं आये, यदि आ जाते तो भुने जौ के साथ वे भी सोम-पान करते।

अनुकूल परिवेश का प्रभाव ही था जिससे वागाम्भृणी आदि तेजस्वी स्त्रियों का आत्मविश्वास इतना प्रखर हुआ और वे कह पायीं- “हे विज्ञ! मैं जो कहती हूँ, वह पूर्ण यथार्थ है, मुझे न मानने वाले क्षीणता को प्राप्त होते हैं, मैं देवताओं और मनुष्यों के परम पुरूषार्थ की उपदेशिका हँ, मेरी कृपा से ही लोग बलवान, मेधावी, स्तोता और कवि बनते हैं।’ ’ 8

भारतीय संस्कृति और परम्पराओं में आस्था रखने वाले लोग वेद को ईश्वर का संविधान मानते हैं। ‘स्त्रीत्व का मानचित्र’ में अनामिका ने घोषा, अपाला, विश्वपारा, लोपामुद्रा, सरमा आदि इक्कीस मंत्रद्रष्टा ऋषिकाओं ने समाज को ज्ञान, दर्शन तथा विधि-विधान सुलभ कराए हैं और कहा गया है कि समाज को सुसंस्कृत करने की क्षमता केवल स्त्री में ही है। अनामिका ने, ऋग्वेद के दशम् मंडल के एक सौ आठवें सुक्त की ऋषिका सरमा का भी उदाहरण दिया है जो पणियों का प्रस्ताव ठुकरा देती हैं और कहती हैं-“मैं किसी भाइचारें को नहीं जानती।’ ’ 9

इसी प्रकार उर्वशी पुरुरवा से कहती है ‘‘स्त्री का हृदय भेड़िए के समान होता है, वह कोई संबंध नहीं जानती।’ ’ 10

जहाँ वेदों में नारी को क्षमा की देवी कहा गया है वहीं उसे प्रतिशोध की काया भी कहा गया है। जहाँ उसके स्वभावों को सराहा वहीं उसके स्वभाव की निंदा भी की गई है। नारी शोषण को लेकर अनामिका ने ऋक् संहिता के दशम् मंडल के 109वें सूत्र में आयी जुहू की कथा का भी वर्णन किया है, जिसमें बृहस्पति ने जब प्रमाद पूर्वक जुहू का परित्याग कर दिया तो वह बिल्कुल भी विचलित नहीं हुई और निर्णायक मंडल के पास गयी। निर्णायकों के आदेश से बृहस्पति ने पत्नी त्याग का प्रायश्चित किया।

प्राचीन काल में सती प्रथा नहीं थी। विधवा-विवाह भी होता था अनामिका ने कहा है कि अथर्ववेद संहिता में पूरा कांड है जो इस विषय पर प्रकाश डालता है पति की चिता के साथ कोई पत्नी जा लेटती थी तो उसे सगे संबंधियों द्वारा हटा दिया जाता था और दूसरा विवाह करने के लिए कहा जाता था। किन्तु विवाह व्यवस्था अंततः स्त्री की सारी स्वाधीनता नष्ट करने में सक्षम हो जाती है। इस विवाह व्यवस्था में स्त्री को पति के घर जाना होता है। यह पराया धन होना आखिरकार स्त्री के लिए कहीं कोई जगह नहीं छोड़ता। जहाँ जन्म होता है उस घर में भी पराये की अमानत बनकर रही और जिस घर में विवाह पश्चात् जाती थी वह घर भी पराया ही रहा। सबसे बड़ा प्रश्न यह है कि विवाह के लिए वर चयन में स्त्रियों की स्वतंत्रता इतनी सीमित क्यों होती है। जो प्राचीन काल से वर्तमान तक चली आ रही है।

बाल विवाह का प्रचलन नहीं था परन्तु अनामिका ने मनुस्मृति में वर्णित आठ विवाह पद्धतियों का उल्लेख किया है जिसमें अंतिम तीन विवाह तो स्त्री के लिए

अत्यन्त कठिन होते हैं परन्तु फिर भी स्त्रियाँ इसके लिए तैयार हो जाती थी। विवाहों का उल्लेख निम्न हंै-

‘ ‘1. ब्राह्मविवाह में वस्त्रालंकारादि से विभूषित कन्या का विवाह वैदिक रीति से सुयोग्य वर के साथ रचाया जाता था।

2. दैव विवाह में कन्या ऋत्विक को उपहारस्वरूप दी जाती थी।

3. आर्ष-विवाह में वर-पक्ष से दो गायें लेकर कन्या का पिता कन्यादान करता था।

4. ‘‘तुम दोनों मिलकर गृहस्थाश्रम का पालन करों’ ’ - बस इस सम्बोधन के साथ वर-वधू गृहस्थाश्रम में प्रवेश करें तो यह ‘प्रजापत्य विवाह’ कहलाता था।

5. गान्धर्व विवाह में स्त्री-पुरुष की आपसी सम्मति ही विवाह की इकलौती गरिमा देती यह व्यवस्था शकुन्तला-दुष्यंत, नल-दमयन्ती आदि कई बड़ी प्रेम-कहानियों का आश्रय तो बनी ही। स्वयंवर की परवर्ती परम्परा का आधार स्तम्भ भी बनी।

6. असुर-विवाह में वर पक्ष से धन लेकर कन्या उसे दे दी जाती थी। यह विक्रय-जैसी व्यवस्था सचमुच आसुरी ही होगी, पर आर्ष-विवाह कहलाने वाली व्यवस्था ही कौन बहुत अच्छी थी जहाँ दो गायें मिलकर एक कन्या के मान की बराबरी कर लेती थी।

7. राक्षस-विवाह में कन्या ग्रहण के लिए युद्ध, हत्या, घात-प्रतिघात सब होता था, जिससे बेचारी कन्या की मानसिक शांति तो जाती ही होगी। जो बेचारा उसे पाने के उपक्रम में मर जाता होगा। उसके लिए उसका मन भारी भी रहता होगा।

8. पैशाच-विवाह में नशे, निद्रा या रोग की स्थिति में कन्याओं का बलात्कार कर देने के बाद विवाह का प्रस्ताव दिया जाता था। जिसने विवाह के पहले से ही त्रास देना शुरू कर दिया हो, वृत्तियों पर जिसे नियन्त्रण ही न हो। उस पुरूष के साथ विवाह कैसा होता होगा।11

अनामिका ने मनुस्मृति के उदाहरण से बताया है कि विवाह-विच्छेद करने वाली स्त्री को कुत्तों से कटवाया जाता था। इसलिए प्राचीन ग्रन्थों में विवाह-विच्छेद का वर्णन नहीं है। कौटिल्य 'अर्थशास्त्र' एक मात्र ऐसा ग्रन्थ है जिसमें विवाह-विच्छेद का वर्णन है। इसमें कौटिल्य कहते हैं कि जब स्त्री-पुरुष दोनों एक-दूसरे से द्वेष करते हों तो उन्हें अलग किया जा सकता है।

'स्त्रीत्व का मानचित्र' में अनामिका ने कन्याओं के साथ प्राचीनकाल से होते आए भेदभाव को भी दर्शाया है। 'कन्यादान' को 'गोदान' के समान माना गया है परंतु प्राचीन में वैदिक समाज में गाय के घर आने पर व्यक्ति खुश होता था परंतु कन्या के जन्म पर नहीं। इस संदर्भ में अनामिका ने निम्न कारण बताए हैं। ''अ) कन्या का पालन-पोषण, उसकी सुरक्षा की जिम्मेदारियाँ पुत्र के पालन-पोषण से दुरूहत्तर होती थी, ब) पढ़ी-लिखी कन्या भी आखिर दूसरे घर को ही सौंप देनी पड़ती थी तो उसका विद्या-वैभव और उसके नाम काढ़ा गया धन (दहेज) भी दूसरे घर चला जाता था ; और

सबसे महत्वपूर्ण यह कि, स) मृत्यु के बाद की आत्मिक शान्ति पुत्र द्वारा दिए गए पिण्डदान से ही संभव मानी गयी थी।’’ 12

विवाह सुक्त में पुत्रों की कामना की गई है परंतु कन्याओं का जिक्र नहीं किया गया है। अथर्वसंहिता में कहा गया है कि पुत्र का जन्म हमारे घर हो और कन्या का जन्म किसी और के घर में हो। अनामिका तैत्तिरीयसंहिता का उदाहरण देते हुए कहती हैं कि ‘‘पुत्र का जन्म होने पर पिता आनन्दपूर्वक माता के पास लेटे हुए नवजात शिशु को हाथों में उठा लेता था, किन्तु कन्या होती थी तो उसे वह वहीं लेटे रहने देता था।’’ 13

ऐतरेय ब्राह्मण में कन्या के जन्म को शोक का कारण माना जाता था। इसके पश्चात् अनामिका ने बृहदारण्यक-उपनिषद् और वाराहग्रह्य-सूत्र का उदाहरण प्रस्तुत किया है जिसमें कन्याओं को भी आदर दिया जाता है। कन्या के जन्म पर दुन्दुभी, गोमुख आदि वाद्य यंत्रों को बजाकर अपनी खुशी प्रकट की जाती है। इस संदर्भ में अनामिका कहती हैं कि ‘‘जन्म के समय लड़कियों का विशेष स्वागत भले ही न तब होता था और न अब होता है, पर विकास के क्रम में लड़कियाँ हमेशा से पिता-माता, भाई-पितामह, चाचा, मामा, सबकी चहेती हो जाती रही हैं।’’ 14

ऋकसंहिता में स्त्रियों के दम से चलने वाली गृहस्थी की शोभा का वर्णन करते हुए कहा है कि पत्नी की उच्च स्थिति के प्रमाण वैदिक साहित्य में मिलते हैं।

‘मध्यकाल’ में विदेशी आक्रमणों एवं भिन्न सांस्कृतिक परिवेश के साथ भारत में इस्लाम के आक्रमण ने पहले संघर्ष, फिर सांस्कृतिक परिवर्तन के लिए जमीन तैयार की। मध्यकाल में कन्या जन्म अशुभ माना जाता था। लड़कियाँ पैदा करने वाली स्त्री को घृणा से देखा जाता था, पुत्र की माता बनने पर ही सम्मान मिलता था। अनामिका

कहती हैं कि ‘‘मध्ययुग की स्त्री-दृष्टि शोचनीय थी आदेशों, आचार-संहिताओं, कहावतों, पाठ्यपुस्तकों, औषधिविज्ञान के ग्रन्थों, संत कथाओं और रोमांसों में भी धड़ल्ले से मध्ययुग स्त्रियों को कोंचता था।’ ’ 15

मध्यकाल में बाल-विवाह प्रचलित था। मुगलकाल से पर्दा प्रथा शुरू हुई। शारीरिक और मानसिक दुर्बलताएँ बढ़ी। स्त्रियों और शुद्रों को संस्कृत पढ़ने की मनाही थी। अनामिका ने मीरां, अक्क महादेवी, गोदा, अण्डाल, चंद्रकला का वर्णन भक्ति आंदोलन की पुरोधाओं के रूप में किया है। मीरा नारी मुक्ति का प्रतीक बनकर उभरी हैं। मीरा ने सामंती जड़, नैतिकता, रीति-रिवाज नारी को तुच्छ और भोग की वस्तु समझी जाने वाली संस्कृति और सिद्धांतों को चुनौती दी है।

सामंती समाज से मीरा को हर समय कष्ट व बातें सुननी पड़ती थी। मीरा के प्रति भोजराज की मृत्यु के बाद सभी लोग उनके प्रति कठोर हो गए। मीरा एक चेतनाशील नारी थी। रोहिणी अग्रवाल कहती हैं, ‘‘घरेलू हिंसा की शिकार औसत स्त्री सरीखी मीरा के पास दो ही विकल्प हंै- रो-रो कर अपने प्राण दे दे या सजग चैकन्नी होकर अपने प्राण और स्वाभिमान की रक्षा करें। सर्पदंश को पुष्पहार और विष को अमृत बना लेने का जीवट सामान्यतया स्त्रियों के पास नहीं होता, मीरा के पास है। एक नहीं, कई अहम फैसलों के रूप में, सबसे पहले आत्म साक्षात्कार कि क्या खरा-खोटा सब डंके की चोट पर कह देने की निर्भीकता उसमें हैं?’’16

मीरा ने परिवार व समाज की परवाह न करते हुए एक विद्रोही नारी का रूप लिया। मीरा के बारे में अनामिका कहती हंै कि ‘‘गृह त्यागकर मीरा वृंदावन गयी वहाँ सत्संग की इच्छा से स्वामी हरिदास के घर उनका जाना हुआ तो हरिदास ने भीतर से कहला

भेजा- हम स्त्रियों को दर्शन नहीं देते। इस पर मीरां का जवाब था, 'अच्छा, इस संसार में कोई दूसरा पुरूष भी है। मैं तो एक को ही जानती हूँ।' ' 17

मीरां स्त्रियों के लिए आदर्श रही हंै। मीरां से स्त्रियों को सीख लेनी चाहिए कि परिस्थितियों से घबराएँ नहीं बल्कि उनका डटकर सामना करें। मीरा स्त्रियों पर होने वाले उत्पीड़न का विरोध करके स्वतंत्र स्त्री का सपना देख सकती हैं परंतु नियति को बदल नहीं सकती। वह संवेदनशील और जागरूक स्त्री की तरह, उन सभी परिस्थितियों का विरोध करती हैं जो समकालीन स्त्री-विमर्श के मुख्य बिन्दु हैं। प्राचीनकाल से लेकर वर्तमान काल तक स्त्री पुरुषवादी सोच की गुलाम रही है।

3.2 लोकसाहित्य और स्त्री

अनामिका ने प्राचीन वेदों, उपनिषदों, पुराणों के गहन अध्ययन के साथ-साथ लोकसाहित्य में भी स्त्री मुक्ति की झलक देखी है। लोक संस्कृति में मनुष्य के अतीत और वर्तमान का लेखा जोखा होता है, जिससे मनुष्य के क्रिया-कलापों को दर्शाते हुए बेहतर मानव जीवन की प्रेरणा प्रदान करता है। लोक साहित्य हमारे सम्पूर्ण जीवन की विकास यात्रा होता है। लोकगीत पुरूषों की अपेक्षा स्त्रियों के अधिक निकट होते हैं। लोकगीतों के माध्यम से ही स्त्री अपने जीवन में आने वाले सुख-दुख, मिलन-विरह, जन्म-मरण, रहन-सहन, वात्सल्य भावना, सामाजिक कुरीतियों का प्रतिरोध आदि संपूर्ण गतिविधियों का वर्णन करती है। हमारे लोकगीत हमारी सामाजिक व्यवस्था के दर्पण रहे हैं। लोकगीतों की रचयिता भी स्त्री को ही माना जाता है। स्त्री और पुरूष में अंतर प्राचीन समय से ही होता आया है। बेटा पैदा होने पर खुशी मनाई जाती है परंतु बेटी होने पर दुःख व्यक्त किया जाता है। श्री कृष्णदास जी लोकगीतों की व्याख्यान करते

हुए कहते हैं कि, '' 'कुछ आपबीती कुछ जगबीती' ये गीत कथात्मक अधिक वर्णात्मक कम होते हैं। इनमें उहापोह का स्थान नहीं, इतिवृत्तात्मकता नहीं, वरन् चित्रात्मकता होती है। इन गीतों में नारी जीवन के द्वारा, नारी जीवन के लिए, नारी जीवन की स्वकथित करूण कहानी होती है जो तत्कालीन समाज का ब्योरेवार कच्चा चिट्ठा प्रस्तुत करके नारी की दशा व दिशा का अत्यन्त स्वाभाविक चित्र उकेरती हैं।' ' 18

अनामिका मानती हैं कि ''स्त्री संबंधी विमर्श के शास्त्रीय आधार जितने सम्पुष्ट हैं, उससे कम सम्पुष्ट उसके लोकतात्विक आधार नहीं।' ' 19

अनामिका मानती हैं कि लोकसाहित्य ही ऐसा आधार है जहाँ जीवन अपने वास्तविक रूप में धड़कता है। लोकसाहित्य में स्त्रियों के बीच ऐसा संबंध बन जाता है जहाँ एक के सुख में ही दूसरे का सुख है और दुख में दूसरे का दुख। लोक जीवन में स्त्री द्वारा गाए जाने वाले गीतों में स्त्री की करुण व्यथा थी। लोकगीतों के शोधकर्ता श्री रामनरेश त्रिपाठी ने गहन अध्ययन करके कहा है कि ''स्त्रियों के गीतों में पुरूषों का मिलाया हुआ एक शब्द भी नहीं है। स्त्री गीतों की सारी कीर्ति स्त्रियों के ही हिस्से की है। ' ' 20

इन सब बातों से लोकगीतों का महत्व बढ़ जाता है। लोकगीतों के कई प्रकार होते हैं। लोकगीतों में हास, परिहास, व्यंग्य आदि अनेक रंग मिलते हैं। विभिन्न अवसरों पर जैसे बच्चे के जन्म के समय, शादी में लोकगीत गाए जाते हैं। 'स्त्रीत्व का मानचित्र' में अनामिका ने इस प्रकार के गीतों के उदाहरण प्रस्तुत किए हैं। बेटी की विदाई के बहुत से गीत ऐसे हैं जिनमें स्त्री-जीवन की पीड़ाएँ अपने ढंग से व्यक्त हुई हैं। अनामिका ने माँ पार्वती का कथन व्यक्त किया है-

‘ ‘केहि विधि सृजी नारि जग माहीं

पराधीन सपनेहुँ सुख नाहीं’ ’ 21

‘ ‘बचपन में पिता की, किशोरावस्था में भाइयों की, युवावस्था में पति की और बुढ़ापे में बेटों की अधीनता-लम्बे समय तक भौतिक, आर्थिक, भावनात्मक परावलम्बन स्त्री जीवन का केन्द्रिय सत्य रहा है। किन्हीं अर्थों में अभी भी स्त्रियाँ साधनों का विनियोग करती हैं। उनका उत्पादन और साज संभाल भी उनके हिस्से होता है, पर उन साधनों के संवितरण पर उनका कोई नियंत्रण नहीं रहता। मायके से आया स्त्री-धन और स्वयं-उपार्जित वेतन भी खर्च होता है। पिता-भाई, पति-पुत्रों की आज्ञा से ही, अपने हाथ से उठाकर वह किसी की एक अद्धी भी दे दे तो बहुधा इस पर हंगामें होते हैं। इसी का प्रतिशोध लोकगीतों के हास-परिहास, व्यंग्य-कटाक्ष आदि कई प्रसंगों में हो जाता है जहां जोगी भीख मांगने आता है तो बहू-ससुर को दे आती है, कूड़ा फेंकने जाती है तो देवर को फेंक आती है।’ ’ 22

क्षमा शर्मा पूर्वांचल के एक लोकगीत के माध्यम से बताती है कि स्त्री अपनी व्यथा को कैसे व्यक्त करती है, वह अपने स्त्री जीवन से दुःखी है और भगवान से प्रार्थना करती है कि मुझे लड़की मत बनाना चाहे मुझे नरक में डाल देना-

‘ ‘ओरे विधाता, बिनती करूँ, परू पइयां बारम्बार।

अगले जन्म मोहे बिटिया ना कीजो, चाहे नरक में दीजों डार।।’ ’ 23

शादी के अवसर पर मजाक में जो गालियाँ वधू पक्ष को दी जाती हैं वह भी दो परिवारों के बीच मन मुटाव को दूर करने का एक उपाय है। लोकगीतों के माध्यम से उपेक्षिता पत्नी अपनी व्यथा को व्यक्त करती है-

‘ ‘झरोखे से झाँक रही,

मेरो जिया जाने,

राजाजी लाए, लाए सौतिनिया

मैं दुल्हन-सी लाग रही, मेरो जिया जाने।’ ’ 24

अनामिका लोकगीतों को घरेलू स्त्रियों के अस्त्र मानती हैं। स्त्री की कोमलता और धैर्य स्त्री के ऐसे अस्त्र बन जाते हैं जिससे बड़े-बड़े शूरवीर परास्त हो जाएं। इस संदर्भ में अनामिका कहती हैं ‘‘पुरूष चाहे उसे युद्ध में जीतकर लाया, चाहे अपहरण करके, चाहे उसकी इच्छा से उसे प्राप्त कर सका, चाहे अनिच्छा से, परन्तु उसने अपने प्रत्येक दशा में नारी को अपनी भावुकता का अर्घ्य देकर पूजा, नारी भी नारियल के कड़े छिलके के भीतर छिपी स्निग्ध प्रवृत्ति का पता पा गयी थी। अतः उसने सारी शक्ति केवल उसकी कोमल भावना जगाने में लगा दी। उसने न अपनी भुजाओं में शक्ति भरने और उस शक्ति के प्रदर्शन से पुरूष को चमत्कृत करने का प्रयत्न किया और न अपनी विद्या बुद्धि से पुरूष को पराजित करने का विचार किया। वह जानती थी कि इन गुणों के प्रदर्शन से पुरूष में प्रतिद्वन्द्विता की भावना जागेगी। परन्तु वह पराजित होकर भी वशीभूत न हो सकेगा क्योंकि प्रतिद्वन्द्वियों की हार-जीत में किसी प्रकार का आत्मसपर्मण संभव नहीं।’ ’ 25

अनामिका कहती हैं कि लोकगीत स्त्री-मुक्ति में सहायक हैं। स्त्रियाँ लोकगीतों के माध्यम से अपनी भावनाएँ व्यक्त कर सकती थी और बड़ी से बड़ी बात को हास-परिहास में व्यक्त कर देती थी। स्त्रियाँ लोकगीतों में ही अपना दुःख-सुख, विरह-वेदना, व्यक्त करती हैं हरकीरत हीर ने लोकगीत के माध्यम से दिखाया है कि स्त्री अपना अधिकार मांग रही है-

‘ ‘आँखों में आँसू नहीं, अब अंगार हैं

होठों पर गिड़गिड़ाहट नहीं, अब सवाल है।

दुःख की भट्टी में जलती बुझती ये औरत,

मुआवजा चाहती है, सदियों से कैद रही अपनी जबान का।’ ’ 26

लोकगीत ही ऐसी जगह हैं जहाँ ग्रामीण स्त्रियाँ अपने मन की बात को कह सकती हैं। पृथ्वीराज राठौड़ और इनकी पत्नी रानी चम्पादे के भी कई गीत प्रचलित हंै। सुमन राजे लोकगीतों पर टिप्पणी करते हुए कहती हैं, ‘‘यह लोगीतों का वह एकान्त कोना है जहाँ स्त्रियाँ एक पहर रात रहे उठकर चक्की चलाती हुई अपनी व्यथा कथा कहती हैं।

अनामिका कहती हैं कि स्त्रीतत्व की मान रक्षा के लिए पूरी प्रकृति सहयोगिनी हो चली है। ओखली में चावल कूटते-कूटते गाये जाने वाले लोकगीत से स्पष्ट करती हैं-

‘ ‘कूटो, कूटो, धान कूटो-

साहब गोरा आए

तो उसे भी कूट दो।’ ’ 27

अनामिका इन गीतों के उदाहरणों के द्वारा ग्रामीण गीतों के सहज माधुर्य, सामाजिक विडम्बना व प्रतिकार की अपनी सहज परंतु विशिष्ट पद्धति को उकेरती हैं, "यही नैसर्गिक प्रज्ञा भारत की ग्रामवधुओं के लोकगीतों, लोककथाओं के आश्रय से लगातार व्यक्त हुई है, जहाँ कोमल हास-परिहास का भी वे एक रणनीति के तहत उपयोग करती रही हैं, आज से नहीं बल्कि आदिकाल से। यह बात अलग है कि उनकी वाचिक परंपरा को कोई अपना संकलनकर्ता, कोई अपना व्यास नहीं मिला। जो कुछ सुरक्षित रह सका, वह केवल धर्म के आश्रय से ; धर्मनिरपेक्ष सारी चीजें संतरणशील रहीं।' ' 28

अनामिका इन लोकगीतों के माध्यम से बताना चाहती हैं कि आधुनिक स्त्री-मुक्ति का बीज रूप इन्हीं लोकगीतों में पाया जाता है। लोकगीतों में लोक संवेदना, लोक भावना, लोक का सुख-दुःख सब समाहित होते हैं। लोक संस्कृति में स्त्री के दुःख की दासतां के साथ उसकी मुक्ति की भावना भी पायी जाती है।

3.3 पाश्चात्य स्त्रीवाद और स्त्रीत्व का मानचित्र

वर्तमान समय में नारी मुक्ति नारी विमर्श, नारीवाद, नारी सशक्तिकरण का शोर मचा हुआ है। स्त्रियाँ मानती हैं कि उनका भी अपना इतिहास है, अपनी पहचान है, अपनी संस्कृति है और अपनी भाषा है। प्रारंभ में पाश्चात्य दार्शनिकों ने स्त्रियों को परम्परागत चश्में से ही देखा था। गुलामों और वहशियों की तरह स्त्रियों को भी दूर रखने की सलाह दी गई थी। सुकरात कहते हैं कि " सच्चे दार्शनिक को तो मृत्यु से बिल्कुल डर नहीं लगता और स्त्रियाँ मृत्यु का नाम सुनते ही रोने-कलपने लगती हैं।' ' 29

प्लेटों कहते हैं कि, " स्त्री की काया के साथ तो कोई स्त्री दार्शनिक गम्भीर कार्यों में शिरकत करने के योग्य नहीं समझी जा सकती, पर इसकी उम्मीद जरूर है कि मृत्यु के बाद कायान्तरण हो, वह पुरुष का चोला पहने और तब संभाले राज-काज। वे यह भी कहते हैं कि जो पुरूष ढंग से अपना कत्र्तव्य पालन नहीं करते, उन्हें अगले जन्म में स्त्री का शरीर (दण्डस्वरूप) मिलता है।' ' 30

अरस्तु कहते हैं, " स्त्रियों को घर के कामकाज और बच्चे जनने और उन्हें बड़े करने में इतना लिप्त रहना पड़ता है कि चिन्तन, मनन आदि उच्चतर वृत्तियों के लिए उन्हें फुर्सत नहीं मिलती और इस तरह वे पार्थिव और नीच बनी रहती हैं।' ' 31

अनामिका सबसे पहले पश्चिमी दार्शनिकों के दृष्टिकोण को देखने का यत्न करती हैं। अनामिका ने प्लेटो, अरस्तु, कान्ट, हीगेल, माक्र्स तथा मिल आदि पश्चिमी दार्शनिकों के उदाहरण द्वारा स्पष्ट किया है कि पश्चिम के दार्शनिक जड़ एवं पूर्वग्रह से युक्त रहे हैं। वह स्त्री को मनुष्य का दर्जा नहीं दे पाए हंै। वह स्त्री जन्म को दण्ड के रूप में देखते हैं। स्त्री उन सबके लिए सुख-सुविधा व भोग का साधन मात्र रही हैं। इन्होंने स्त्री को अयोग्य, अक्षम तथा हीन माना है।

पाश्चात्य स्त्रीवाद

एंजेल्स भी समाज में स्त्री की दयनीय स्थिति के बारे में बताते हैं। माक्र्स स्त्रियों को समाज के कार्यों में थोड़ा सक्षम मानते हैं। अनामिका कहती हैं कि इनकी दृष्टि भी पितृसत्तात्मक मान्यताओं से मुक्त नहीं है।

नारीवाद एक राजनीतिक विचार है जो यह मानता है कि स्त्रियाँ भी मनुष्य हंै। नारीवादी सिद्धांत स्त्री केन्द्रित ज्ञान की चर्चा करता है। स्त्री की आजादी के आंदोलन को

अनेक प्रकार की समस्याओं से होकर गुजरना पड़ रहा है। देकार्ते के अनुसार ‘‘स्त्री भी कह सकती है कि मैं सोचती हूँ इसलिए मैं हूँ, मेरा अस्तित्व है। चिंतन करना व्यक्ति के युक्तिपरक होने का सबूत है। अपनी इस सामथ्र्य के कारण तो व्यक्ति जानवर से भिन्न होता है। बुद्धि एक सार्वभौम गुण के रूप में उभरती है जिसके कारण जानवर और इंसान की भिन्नता कायम रहती है। लेकिन स्त्री ने जब इस गुण का इस्तेमाल करते हुए अपने आप से अपने परिवेश से और पुरूष की सत्ता से पूछा कि ‘क्या मैं इंसान हूँ?’ ’क्या मेरी भी कोई मानवीय गरिमा है?’ तो उसे जो जवाब मिला वह कुछ और था। उसकी समझ में आ गया कि इंसान की श्रेणी में तो पुरुष हंै, स्त्री तो एक संपूरक भर है।’ ’ 32

नारीवाद में स्त्री के अस्तित्व और उसके अधिकारों की बात की जाती है, जिस प्रकार दलित साहित्य में गैर दलितों के लिए कोई जगह नहीं है उसी प्रकार नारीवाद में स्त्री के बारे में पुरूष की सोच शत्रुपक्ष जैसी है। स्त्रीवादी चिंतक मानते हैं कि पितृसत्ता ने स्त्री के बौद्धिक विकास को ही कम नहीं किया बल्कि स्त्री के स्वयं के मूल्यबोध को भी तुच्छ किया है। एलिसन जैगर कहती हंै कि ‘‘दुनिया को तौलने का पुरुषोचित नजरिया है। हालांकि कुछ एक दार्शनिक जैसे प्लेटो, जाॅन स्टुअर्ट मिल एवं माक्र्स ने स्त्री पुरुष को समकक्ष रखने की चेष्टा की किन्तु इनमें से अधिकतर दार्शनिकों अरस्तू, कान्ट, हीगेल और नीत्शे को स्त्री जाति की बौद्धिक और तार्किक क्षमता पर गहरा संदेह था।’ ’ 33

नारीवाद की अनेक विचारधाराएँ समाज में चली। इससे नारी मुक्ति आंदोलन को नयी पहचान मिली। अमेरिका में 1963 में ‘इक्वल पे ऐक्ट’ और ब्रिटेन में 1967 में ‘अबोर्शन ऐक्ट’ पारित हुआ। इन आंदोलनों से स्त्रियों में नई जागृति और

आत्मविश्वास पैदा हुआ। इनमें उदारवादी स्त्रीवाद, विप्लवकारी, स्त्रीवाद, पूँजीवादी स्त्रीवाद, माक्र्सवादी स्त्रीवाद, समाजवादी स्त्रीवाद आदि अनेक नामों से आंदोलन चलाए गए।

उदारवादी स्त्रीवाद

उदारवादी स्त्रीवाद का अपना एक लंबा इतिहास रहा है। इस आंदोलन की शुरूआत 1960 से मानी जाती है। उदारवादियों का मुख्य उद्देश्य स्त्रियों को पुरूषों के समान अधिकार दिलाना है। उदारवादियों ने पितृसत्ता का विरोध तो किया परन्तु पारिवारिक संरचना का विरोध नहीं कर पाये। इसकी सबसे पहले शुरूआत 1961 में जाॅन.एफ.कैनेडी ने की। कमीशन आॅन द स्टेटस आॅफ विमेन' को गठित कराया इसके पश्चात 'सिविल राइट्स संगठन' और फिर 'नेशनल आर्गेनाइजेशन फाॅर विमेन' का गठन हुआ।

अमेरिका में समान अधिकार संशोधन बिल पास हुआ लेकिन परिवार में पत्नी को अपने पति के अधीन ही रहना पड़ता था। जाईला आई जेनेस्टाइन के अनुसार, ''व्यक्ति स्वतंत्रता के प्रसंग में उदारवादी विचारधारा केवल बाह्य दुनिया में लागू होती है। परिवार में अब भी पितृसत्ता की दमनकारी नीतियाँ बरकरार हैं। अतः हमें पारिवारिक संस्था के रूप में बची हुई पितृसत्ता को खत्म करना होगा।'' 34

अनामिका उदारवादियों के संदर्भ में जान स्टुअर्ट मिल का उदाहरण प्रस्तुत करते हुए कहती हैं कि ''भार ढोना आदि कुछ गतिविधियाँ ऐसी हैं जिनमें स्त्रियाँ पुरुषों से उन्नीस पड़ती हंै। स्त्री और पुरुष के बीच जीवशास्त्रीय विषमताएँ अवश्य हैं पर बौद्धिक और नैतिक क्षमताएँ दोनों की बराबर हंै। आगे चलकर उन्होंने कहा कि स्त्री और पुरूष

की मानसिक और स्वभावगत जो विशिष्टताएँ हंै, वे भी सांझे की हो जानी चाहिए। पुरुषों में स्त्रियोचित और स्त्रियों में पुरुषोचित गुणों का समावेश हो तो व्यक्तित्व आदर्श बनता है, और ऐसे न भी हो तब भी स्त्रियों को विकास के अवसर बराबर दिया जाना निहायत जरूरी है।' ' 35

उदारवादियों का मुख्य उद्देश्य स्त्री पुरुषांे में समानता लाना है। उदारवादी चाहते हैं कि स्त्री को समान शिक्षा मिले जिससे वे समाज में समान अवसर प्राप्त कर सकेंगी। जेम्स स्टर्बा कहते हैं, '' दफ्तर, मिल आदि सभी कार्य स्थलियों के काम के घंटे कुछ इतने लचीले होने चाहिए कि माँ और बाप दोनों बारी-बारी से बेबी सिंिटंग कर सके- ऐसा नहीं कि बच्चों को दिन-भर सिर्फ माँ का साथ मिले।' ' 36

अनामिका उदारवादियों का सबसे बड़ा योगदान राजनीतिक समानता, स्त्री को वोट देने का अधिकार, तथा सम्पत्ति के अधिकार के लिए लम्बा संघर्ष है। सिमोन द बोउआ कहती हैं, स्त्री पैदा नहीं होती, स्त्री बना दी जाती है। पाश्चातय समाज में स्त्री की स्थिति के बारे में कहती हैं कि अपनी नियति पलटना अब खुद स्त्री के हाथ है। बेट्टी फ्रायडन -'द फैमिनीन मिस्टीक' में कहती हैं ''यहाँ मध्यवर्गीय और उच्चवर्गीय महिलाओं की स्थिति का मूल्यांकन करते हुए यह निष्कर्ष निकाला गया है कि जैसे-जैसे पुरुष प्रभुत्व सम्पन्न हुए, स्त्रियाँ भोली, अबोध बच्ची के रूप में गौरवान्वित की जाने लगी। ऐसी 'अबोध परी बच्ची' जिसे लगातार संरक्षण की आवश्यकता है। उनके अभेद्य गुड़िया। परीतत्व, उनकी झिलमिल रहस्यमयता पर ऐसे अनूठे कसीदे पढ़े गये कि वे बेचारी उन्हीं को सुरक्षित रखने की फिराक में अपने मूल जाग्रत स्वरूप को विसरा बैठी।' ' 37 उदारवादी लड़ाई से नहीं बल्कि कानूनी ढंग से समानता चाहते हैं।

रैडिकल फेमिनिज्म या विप्लवकारी स्त्रीवादी

अनामिका कहती हंै कि ‘‘1968 में टाइग्रेस ऐटकिन्सन के नेतृत्व में लिबरल ग्रुप से रैडिकल ग्रुप अलग हो गया-यह मानता हुआ कि छिटपुट सुधारों से कुछ होने वाला नहीं है। पुरुषों के साथ ‘साम-दाम-दण्ड-भेद’ आजमाते जाने से स्त्रियों का दमन नहीं रूक सकता। लड़ाई पुरुष से नहीं, पितृसत्तात्मक समाज से होनी चाहिए। योजनाबद्ध ढंग से इसकी एक-एक संस्था में खासकर परिवार, चर्च (कोई भी धार्मिक निकाय) और एकेडेमी (विश्वविद्यालय आदि) में वैधानिक, राजनीतिक और आर्थिक ढंग से संरचनात्मक परिवर्तन घटित कराए जाने चाहिए।’ ’ 38

उस समय में पूरा समाज शासक वर्ग की नीतियों के विरूद्ध असंतोष से भरा हुआ था। 1968 में फ्रांस का छात्र आंदोलन यूरोप के युवाओं और बुद्धि जीवियों को प्रभावित कर रहा था। सिद्धांतकारों, स्त्री संगठनों और मंचों ने स्त्री के शत्रु के रूप में पुरूष, पितृसत्तात्मक समाज, परिवार संस्था, स्त्री के जैविकीय प्रजनन कार्य को जिम्मेदार ठहराया गया। विप्लवकारी त्यागमूर्त मातृशक्ति को स्त्रियों के लिए अधिक त्रासद मानते हैं। पहले ये गर्भधारण को ही स्त्रियों की उन्नति में बाधक मानते थे बाद में ये इस निष्कर्ष पर पहुँचे कि ‘‘स्त्रियों की गर्भधारण की क्षमता उनके विकास में बाधक नहीं, बाधक है प्रजनन और शिशु-संरक्षण पर पुरुषों का सीधा नियंत्रण।’ ’ 39

यह स्त्रीवाद पुरूष विरोधी माना जाता है। इन्होंने स्त्री मुक्ति आंदोलनों को अलग से संगठित करना शुरू कर दिया। यह एक ऐसा संगठन चाहता था जो पुरुषवाद की विकृति से मुक्त हो।

मनोविश्लेषणात्मक स्त्रीवाद

पहली महिला-मनोविज्ञानविद नैन्सी चोदोरोव ने स्त्रियों की मातृमूलक संवेदनाओं का सूक्ष्म अध्ययन करने के पश्चात् इस प्रक्रिया का विश्लेषण किया- ‘‘स्त्रियों को माँ से अलग अपना व्यक्तित्व प्रोजेक्ट करने की जरूरत नहीं होती तो इसका प्रभाव उनके व्यक्तित्व पर अच्छा ही पड़ता है- जिनमें भी उनका जुड़ाव होता है, उनसे यह जुड़ाव पूरा होता है।’’ 40

मनोविश्लेषणवादी मानते हैं कि बच्चा अपने माँ-बाप से जुड़ा रहता है और उन्हें ही सर्वशक्तिमान मानता है। माँ अपनी अंतरंगता कायम रखती है। स्त्री कभी भी पूर्ण रूप से पितृसत्तात्मक संस्कृति से अलग नहीं हो सकती। स्त्री केन्द्र नहीं है परिधि है इसलिए वह शासक नहीं है शोषित रहती है। प्लेटो और देकर्ते मन की तुलना में शरीर की निंदा करते हैं। नेलसन गार्नर कहती हैं, ‘‘फ्रायड पूर्वानुमानित रूप से तथा अनिवार्य रूप से व्यक्ति के यौन जीवन को इतरलिंगी मानते हैं। स्त्री-पुरूष जीवन में वे इसे एक आदर्श नियामक के रूप में प्रस्तुत करते हैं। किन्तु पचास के दशक के बाद बहुतेरे मनः शास्त्रियों ने समलैंगिकता का वर्णन एक जीवन शैली के चुनाव के रूप में किया। इससे पहले समलैंगिता समाज की नजर में एक बीमारी थी।’’ 41

माक्र्सवादी स्त्रीवाद

माक्र्सवादी स्त्री-पुरूष के बीच समानता का अधिकार चाहते हैं। स्त्रियाँ जो घर के बाहर काम करती थी उन्हें पुरुषों के समान वेतन व अधिकार मिले। प्रभा खेतान लिखती हंै, ‘‘माक्र्स की इच्छा थी कि महिलाएँ भी इस कार्यवाही में बराबर की हिस्सेदार हांे। उन्होंने कल्पना की थी कि जब-जब स्त्री श्रम करेगी वह नियंत्रित होने वाली शक्ति से

बदलकर नियंत्रणकारी शक्ति बन जायेगी। परिवार की पुरानी संस्था टूट जायेगी, नया परिवार जन्म लेगा और स्त्री-पुरूष संबंध एक नए उन्नत धरातल पर पहुँच जाएँगे।' ' 42

प्राचीन समय से ही परिवार में पितृसत्तात्मकता स्त्री को सर्वहारा बने रहने पर मजबूर करती है। नारीवादी महिलाओं ने माक्र्सवाद के नारी प्रसंग को स्पष्ट करते हुए कहा है, ''माक्र्स और एंगेल्स नारी से उम्मीद करते हैं कि वह क्रांतिकारी संघर्ष में पुरूषों के साथ बराबरी की हिस्सेदारी करेगी पर वे यह उम्मीद करते हुए नजर अंदाज कर देते हैं कि समाज में पुरूषों के मुकाबले गिरी हुई स्थिति होने के कारण वह संघर्ष में उस बराबरी को कभी हासिल ही नहीं कर सकती। सैद्धांतिक रूप से माक्र्सवाद द्वारा औरत को मजदूर वर्ग संपूर्ण अधिकारों के साथ प्रवेश दिला दिया गया लेकिन व्यावहारिक रूप से यह असंभव निकला। परिवार में लौटकर पुनः पूँजीपति पुरूष के मुकाबले उसे सर्वहारा बना जाना पड़ा और बाहर जुलूस का साथी घर में घुसते ही उसके मालिक में बदल गया। ' ' 43

माक्र्सवादियों ने हमेशा श्रम पर जोर दिया है, स्त्री को पुरूष की अपेक्षा श्रम की कीमत कम मिलती है। माना जाता है कि पुरूष को तो परिवार का भरण-पोषण करना पड़ता है, जबकि स्त्री केवल अतिरिक्त आय के लिए श्रम करती है, वह स्वयं के लिए पैसे कमाती है। स्त्री के श्रम का यह मूल्याकंन पुरुष वर्चस्व को बढ़ावा देता है। 1968 की छात्र सभा में जर्मन माक्र्सवादी स्त्री कार्यकर्ता हेक्ले सेंडर ने कहा -''स्त्री को पहचान तभी मिलेगी जब वह मंच पर अपने निजी जीवन की समस्याओं से एकबद्ध होकर संघर्ष करें। ' ' 44

समाजवादी स्त्रीवाद

एंगेल्स के अनुसार, ‘‘ परिवार के अंदर श्रमिक पति का रूप पँूजीपति वर्ग के सदस्य जैसा हो जाता है और स्त्री का रूप सर्वहारा जैसा हो जाता है। इसलिए स्त्री बच्चों के भरण-पोषण में बिना किसी मूल्य के अपने श्रम का अवदान देती रहती है।’ ’ 45

स्माजवाद की अवधारणा का आधार है, हर व्यक्ति को उसकी योग्यता के अनुसार कार्य और समान वेतन मिले। स्त्री का शोषण व्यक्तिगत संपत्ति में असमानता के कारण होता है। 1970 के दशक में समाजवादी स्त्रीवादी ने बाहरी क्षेत्रों में काम करने वाली स्त्रियों को संगठित करना शुरू किया और स्त्रियों के काम को स्त्री-श्रम की संज्ञा प्रदान की। फ्रेडरिक एंजेल्स ने अपनी पुस्तक ष्ज्ीम वतपहपद व िजीम थ्ंउपसलए च्तपअंजम च्तवचमतजलए ंदक जीम ैजंजमष् में कहा है कि ‘‘पितृसत्तात्मक समाज के मूल में हैं पूँजीवाद और यदि हर वर्ग, हर समुदाय की स्त्रियों का अभ्युदय होना है- सिर्फ वर्ग विशेष की चुनी हुई स्त्रियों का नहंी- तो पूँजीवादी व्यवस्था ही ध्वस्त कर देनी होगी। समाजवादी व्यवस्था में किसी का किसी पर आर्थिक परावलम्बन होगा ही नहीं तो स्त्रियाँ भी पुरुषों के शोषण चक्र से मुक्त हो लेंगी, और तब वे किसी पुरुष से अपना संबंध जोडें़गी तो उस वरण को परिसीमित और कलंकित करने वाला कोई आर्थिक आधार नहीं होगा।’ ’ 46

अनामिका मानती हैं कि स्त्री को पितृसत्तात्मक समाज के शोषण से बचाने के लिए उदारवादी स्त्रीवाद, विप्लवकारी स्त्रीवाद, माक्र्सवादी स्त्रीवाद, समाजवादी स्त्रीवाद सभी को एक साथ आना होगा। ‘‘सोशलिस्ट फेमिनिस्ट्स यह नहीं मानती कि औरतों का कामकाजी होना ही उन्हें पुरूषों के समकक्ष बना देगा। माक्र्सवादी

फेमिनिस्ट्स मानती हंै कि स्त्रियों की इस दुर्दशा की जिम्मेदार उत्पादन की संरचना है। रैडिकल फेमिनिस्ट्स मानती हैं इसका कारण प्रजननात्मक और यौन-संबंधी शोषण है और लिबरल फेमिनिस्टस इसका जिम्मेदार बच्चों के गलत समाजीकरण को ठहराती हंै। मनोविश्लेषणात्मक स्कूल अन्तः करण पर पड़े अनुचित दबावों की बात उठाता है। दरअसल मुक्ति तो तभी संभव है जब ये सारे तरीके एक साथ आजमा लिए जाएँ।’ ’ 47

उत्तरआधुनिकतावादी स्त्रीवाद

पोस्टमाॅडर्न फेमिनिज्म उत्तरआधुनिक स्त्रीवादी मानते हैं कि स्त्री-परुष एक-दूसरे के पूरक है। विवाह, मातृत्व, सृष्टि के विकास में बाधक नहीं है। वे मानते हैं कि भाषा ही स्त्री विरोधी है। हेलेन का उदाहरण स्पष्ट करते हुए अनामिका लिखती हैं, ‘‘ भाषा पितृसत्तात्मक समाज की भाषा- चंूकि उनके साथ न्याय नहीं करती, उनके प्रति पूर्वग्रह रखती है, इसलिए स्त्रियों को चाहिए कि भाषात्मक प्रयोेगों द्वारा भाषा की सरहदें भी तोड़ें।’ ’ 48

भाषा पर माक्र्स और एंगेल्स ने ‘जर्मन आइडियाॅलाजी’ में लिखा है कि ‘‘भाषा विचार की तात्कालिक वास्तविकता है। दार्शनिकों ने जिस प्रकार विचार को एक स्वतंत्र अस्तित्व प्रदान किया है। उसी तरह भाषा को भी स्वतंत्र सत्ता देनी होगी।’ ’ 49

उत्तरआधुनिक स्त्रीवादी पितृसत्ता को मातृसत्ता में बदलना नहीं चाहते बल्कि समानता चाहते हैं। एलेन सिक्यू अपने लेख ‘ैवतजपबे’ में कहती हैं कि ‘‘भाषा एक युद्ध क्षेत्र है।’ ’ 50

पितृसत्तात्मक व्यवस्था स्त्री को अपनी सम्पत्ति का हिस्सा समझती है, अनामिका कहती हैं कि ''स्त्री पिता से पति को जाने वाली चल-सम्पत्ति है जिस पर भरपूर अधिकार जमाया जा सकता है।' ' पुरुष के लिए 'सम्पत्ति' और स्त्री के लिए सम्पत्ति का अर्थ उपहार है। अनामिका ने उदारवादी नारीवाद, विप्लवकारी नारीवाद, माक्र्सवादी नारीवाद समाजवादी स्त्रीवादी, उत्तर आधुनिक स्त्रीवाद का विश्लेषण करने का एक ही लक्ष्य है स्त्रियों की मुक्ति।

3.4 देवत्व का प्रश्न और स्त्री

समाज में स्त्री को देवी का प्रतिरूप माना जाता है। अनामिका भी कहती हैं कि किसी को जीते जी मारना है तो उसे देवता घोषित कर दो। स्त्री को देवत्व प्रदान किया जाता है तो सभी चाहते हैं कि वह करूणा, क्षमा, औदार्य, सहनशीलता, दूसरों के दुःख हरने वाली, विनम्र, प्रतिमूर्ति के रूप में रहे। सेवा भाव स्त्री का महत्वपूर्ण अंग माना जाता है। प्राचीन भारतीय संस्कृति ने नारी को सबसे ऊँचा स्थान प्रदान किया है। जननी को जनक से विशिष्ट माना जाता है। प्राचीन आर्यो ने नारी को विचार , धर्म, नियम और व्यवहार सबमें समान अधिकार दिया है। स्त्री को महाशक्ति, महाविद्या, महामेधा आदि अनेक नामों से संबोधित किया जाता है। मनु ने कहा है कि ''जिस कुल में स्त्री से पुरुष प्रसन्न रहता है और पुरुष स्त्री , उसका अवश्य कल्याण होता है।' ' 51

समाज में यदि कोई स्त्री अन्याय सहन करती है, मूक दर्शक बनी रहती है, उसे सीता-सावित्री कहा जाता है। क्या यह उचित है? न ही तो सीता कठपुतली थी और न सावित्री। दोनों स्वतंत्र व्यक्तित्व थे। सीता अपने समय की पहली स्त्री थी, जो पति के साथ ही सही, घर की चारदीवारी से बाहर तो निकली। अनामिका ने स्त्रीत्व का मानचित्र

में लिखा है, ‘‘सीता का सबसे बड़ा सच है लक्ष्मण रेखा लांघ जाना यानी आपात स्थिति में अपने विवक के हिसाब से नियमावलियों में परिवर्तन का साहस।’ ’ 52

उत्तररामचरित में भगवान रामचंद्र ने कहा है ‘‘यह मेरे घर की लक्ष्मी है, आँखों की मृतश्लाका है, इसका स्पर्श शरीर के लिए गाढ़ा चंदन रस है, इसकी भुजा मेरे गले में मोतियों की माला की भांति शीतल और सुखद है, वियोग जनित दुःख को छोड़कर मुझे सीता की कौन सी बात प्यारी नहीं।’ ’ 53

इसमें जो स्त्री की महत्ता के बारे में कहा है उससे अधिक और क्या कहा जा सकता है ? परंतु आज के समाज में ये कितना सत्य है ? स्त्री और पुरुष में किसे प्राथमिकता मिले? सीता का धरती में समा जाना भी इस समाज के प्रति विद्रोह दर्शाता है। अनामिका देवी पार्वती का उदाहरण प्रस्तुत करती हंै- पार्वती अपने पिता से ही बगावत करती हैं। पिता के असंगत व्यवहार के कारण वह आग में कूद जाती हंै।

स्त्री में देवत्व का गुण पुरुष की तुलना में अधिक होता है। नारी के रूप में परमात्मा का दर्शन हम पग-पग पर कर सकते हैं। नारी को मूर्तिस्वरूप महामाया माना जाता है। नारियों को विभिन्न देवियों के रूप में पूजा जाता है। ब्राह्मण भोजन की तरह कन्या भोजन कराया जाता है। कन्याओं में विद्या, तपस्या, सेवाभाव जन्मजात होते हैं। नवरात्रों में देवी के शक्ति रूप की पूजा होती है। जब स्त्री जननी है तो संहार करने का प्रथम अधिकार भी स्त्री का ही होना चाहिए। स्त्री में देवत्व का समावेश माना जाता है। यदि स्त्री देवी है तो उसकी मनुष्य जैसी आवश्यकताएँ व इच्छाएँ नहीं हो सकती या स्त्री को देवी मानना एक छल है। स्त्री को मूर्त रूप में स्थापित कर मानवीय संवेदनाओं से दूर रखा जाए। स्त्री को देवत्व प्रदान करना, पुरूष को समाज में एकाधिकार स्थापित करने

के लिए तो नहीं है। स्त्री देवी का प्रतिरूप है, फिर भी उसे दोयम दर्जा ही क्यों प्रदान किया जाता है। इस संदर्भ में महादेवी वर्मा कहती हैं कि ‘‘हमारी पूजा-अर्चना की सफलता के लिए यह परम आवश्यक है कि हमारा देवता हमारी वस्तुओं पर हमारा ही अधिकार रहने दे और केवल वही स्वीकार करे जो हम देना चाहते हैं। इसके विपरीत होने पर तो हमारी स्थिति भी विपरीत हो जायेगी। भारतीय स्त्री के संबंध में भी यही सत्य हो रहा है। उसको बहुत आदर मान मिला, उसके बहुत गुणानुवाद गाये गये, उसकी ख्याति दूर-दूर देशों तक पहुँचाई गई, यह ठीक है, परन्तु मंदिर के देवता के समान ही सब उसकी मौन जड़ता में ही अपना कल्याण समझते रहे। उसके अत्यधिक श्रद्धालु पुजारी भी उसकी निर्जीवता को ही देवत्व का प्रधान अंश मानते रहे हैं और आज भी मान रहे हैं।’ ’ 54

आज स्त्री इन सब मान्यताओं से स्वतन्त्र होना चाहती है। स्त्रीत्व और मातृत्व के बंधनों से मुक्त होना चाहती है। वह रूढ़िगत मान्यताओं से निकलकर पुरुष के समकक्ष खड़ा होना चाहती है। माक्र्स ने कहा था कि स्त्री को देवी कहना उसका सबसे बड़ा अपमान है। जो पुरुष उसे देवी रूप में पूजता है, स्त्री उसी पुरुष द्वारा प्रताड़ित होती है, उसे शारीरिक और मानसिक यातनाएँ झेलनी पड़ती है।

अनामिक कहती हैं, ‘‘ ‘देवी’ और ‘दासी’ के बीच की दीवार वहाँ इतनी कमजोर है कि ‘देवी’ घिस-घिसकर जल्दी ही ‘देई ’’ और ‘दाई’ बन जाती है। बहुत ही सुविधाजनक व्यवस्था है ‘देवी’ पुकारना और खुश फहमियों के रंगमहल में गिरफ्तार करके ‘दासी’ की इस परिणति तक पहुँचा डालना।’ ’ 55

स्त्री मुक्ति का सबसे प्राचीनतम ग्रन्थ लगभग 2500 वर्ष पुराना थेरी गाथाएँ है। बौद्ध धर्मग्रन्थ ‘सुत्तपिटक’ के अंतर्गत पाँच भागों में 73 बौद्ध भिक्षुणियों की 512 थेर

गाथाओं का संकलन है। इसमें ऋग्वेदकाल की रोमशा, लोपामुद्रा, श्रद्धा, कामायनी, यमी, वैवस्वती, पोलौमी, शची, विश्वपारा, अपाला, सूर्या, शाश्वती, ममता, उशिज आदि ऋषिकाओं के नाम मंत्र द्रष्टा के रूप में प्राप्त होते हैं। सुमन राजे लिखती हंै, ‘‘थेरी गाथा में विभिन्न वर्गों एवं वर्णों की महिलाएँ शामिल हंै जिन्होंने भिक्षुणी बन अपने जीवन के संचित अनुभवों को इन गाथाओं में गाया है। खेमा, सुमना, शैला और सुमेधा कोसल , मगध और आलवी के राजवंशों की महिलाएँ थी। महाप्रजापति गोमती, तिष्या, अभिरूपा नन्दा, सुन्दरी नन्दा, जेन्ती, सिंहा, धीरा, मित्रा, भद्रा, उपशमा और अन्यतरा आदि थेरियां शाक्य और लिच्छवि सामन्तों की कन्याएँ थी। मैत्रिका, अन्यतरा, उत्तमा, चाला, उपचाला, शिशूपचाला, रोहिणी, सुन्दरी, शुभा, भद्रा, कापिलायिनी, मुक्ता, नन्दा, सकुला, चन्दा, गुप्ता, दन्तिका और सोमा ब्राह्मण वंश की थी। गृहपति और वैश्यवर्ग की महिलाओं में पूर्णा, चित्रा, श्यामा, उर्विरी, शुक्ला, धम्मदिन्ता, उत्तमा, भद्रा, कुण्डलकेशा , पटाचारा, सुजाता, और अनोपमा के नाम लिये जा सकते हैं। अडढ़कासी, अभयमाता, विमला और अम्बपाली गणिकाएँ है। शुभा सुनार की पुत्री है और पूर्णिका दासी की।’ ’ 56

थेरी गाथाओं की पहचान अनेक मुखी है, ये उनके भीतर की यात्राएँ है। इसमें वे अपनी पूर्व स्मृतियों को भी जोड़ती है। सुमंगला छाता बनाने वाले की पत्नी थी। इनका पति इन्हें दुःखी रखता था। थेरी बनने पर इन्होंने लिखा है-

‘ ‘अहो मैं मुक्त नारी, मेरी मुक्ति धन्य है।

पहले मैं मूसल ले धान कूटा करती थी,

आज उससे मुक्त हुई।’ ’ 57

साध्वी बनने के बाद भी समाज में इनकी स्थिति दयनीय थी। उन्हें भी समाज में साधारण स्त्री की तरह ही कटाक्ष का पात्र बने रहना पड़ता था। अनामिका एक थेर का उदाहरण प्रस्तुत करती हैं ‘‘जो स्थान ऋषियों द्वारा भी प्राप्त करना अत्यन्त कठिन है, उसे दो अंगुल मात्र प्रज्ञावाली स्त्री भी प्राप्त कर लेगी, यह कभी संभव नहीं।’ ’ 58

गौतम बुद्ध ने सामाजिक दृष्टि से स्त्री को पुरुष से हीन नहीं माना। बुद्ध ने सिद्धान्त रूप में नारी की सामाजिक प्रतिष्ठा पुरुष के बराबर कर दी किन्तु फिर भी उसे पुरुष की दासतां से मुक्ति नहीं मिली।

अनामिका कहती हैं आज किसी भी जगह यदि चार सीताएँ, चार सावित्रियाँ, चार पार्वतियाँ अपनी पूरी प्रतिरोध शक्ति के साथ उठ खड़ी हो तो समाज का नक्शा ही बदल जायेगा।

3.5 स्त्रीवादी आलोचना और समकालीन साहित्य

अनामिका कहती हैं कि स्त्रीवादी आलोचना की मुख्य लड़ाई भाषाई औजार से लड़नी है पश्चिम में स्त्रीवादी आलोचना की शुरूआत जाॅन स्टुअर्ट मिल की पुस्तक ‘अ सब्जेक्शन आॅफ वुमैन’ (1896) से हो चुकी थी। वर्जीनिया वुल्फ की ‘अ रूम आॅफ वन्स ओन’ (1942) में तथा 1949 में सीमोन द बाउवार की पुस्तक ‘द सेकेन्ड सेक्स’ का प्रकाशन हुआ। सन् 1960 में स्त्रीवादी आलोचना की शुरूआत होती है। छठे दशक में केट मिलेट, जरमेन ग्रीयर, मेरी मिल्टन ने स्त्रीवादी आलोचना में स्त्री सम्मत विषयों पर अलग से अध्ययन प्रारंभ किया। अनामिका लिखती हैं, ‘‘आठवें और नवें दशक में स्त्रीवादी आलोचना को भाषा, मनीषा आदि गम्भीरतम प्रश्नों से जूझना पड़ा जिनके

बारे में अलग से विमर्श प्रस्तावित है। इनकी मूल स्थापना थी कि पुरुष/स्त्री, संस्कृति/प्रकृति आदि द्विपद विलोमों मे सोचने के हमारे अभ्यास ने नम्बर दो पर आने वाले हर प्रत्यय की भाषा अवरूद्ध रखी। पितृसत्तात्मक व्यवस्था में स्त्रियों की भाषा विकसित हुई थी तो सीमित।'' 59

अनामिका मानती हैं कि स्त्रियों का अनुभव पक्ष ही नहीं अनुभूति पक्ष भी पुरुषों से अलग और विशिष्ट होता है। माक्र्सवादी/समाजवादी आलोचना तीन प्रक्रियाओं के प्रति सजग रहती है। ''(1) साहित्य की दूसरी सांस्कृतिक विधाओं से होने वाली अंतःक्रिया के प्रति (2) साहित्य पाठकों पर जो प्रभाव डालता है उसके प्रति और (3) प्रोडक्शन के समय वह बाजार आदि जिन तत्वों से प्रभावित होता है, उसके प्रति भी।'' 60

अनामिका मानती हैं कि पितृसत्तात्मकता के पूर्ण विलय के लिए सामाजिक के साथ सांस्कृतिक क्रांति भी आवश्यक है। स्त्री मुक्ति में प्रजनन, उत्पादन, बच्चों का समाजीकरण, यौन शक्ति सभी बाधक तत्व हंै। इन चारों में परिवर्तन करके ही स्त्री मुक्ति संभव है। अनामिका कहती हैं कि आज भी 'हिज स्टोरी' को 'हर स्टोरी' आसानी से नहीं बनने दिया जाता। पिता के द्वारा बनाई हुई दुनिया में पिता के बनाए कानून ही चलते हैं, भाषा पितृसत्तात्मक दंड विधान का प्रतीक है। अनामिका स्त्रीवाद की सीमाओं की ओर भी संकेत करती हैं। प्रथम चरण के प्रतिक्रियावादी स्त्रीवाद से जो हर प्रकार के स्त्री विरोधी बात के विरूद्ध निशाना साधता चलता है। वे दूसरे चरण के स्त्रीवाद को ज्यादा खतरनाक मानती हैं। जो आदर्श व प्रयोजित चरित्रों की सृष्टि पर ही केन्द्रित होकर जीवन से दूर चला जाता है। साथ ही वे यह भी स्वीकार करती हैं कि कई पुरूष लेखकों ने भी स्त्री चेतना का स्टीक वर्णन किया है।

समकालीन स्त्रीवादी रचनाकारों में अनामिका की भूमिका

समय के साथ-साथ समाज भी बदल रहा है। आधुनिक कथा साहित्य में परम्परागत पुरुषवादी सोच को तोड़कर स्त्री के भीतरी व्यक्तित्व को पूरी निडरता से खोला जाने लगा है। हिन्दी साहित्य के क्षेत्र में महिला लेखन कार्य अपनी भिन्न पहचान बनाने में बहुत अधिक सफल रहा है। स्वातंत्र्योत्तर भारत में सामाजिक, आर्थिक एंव राजनैतिक स्त्रियांे ने निश्चित रूप से महिलाओं की चेतना को नारी जीवन के संदर्भ में झकझोरा है, स्त्री के निजी अनुभव स्त्री की स्वाभाविकता के साथ लिख सकती हैं।

आधुनिक महिला लेखिकाओं ने नारी शोषण और नारी मुक्ति को अपने साहित्य द्वारा व्यक्त करने का प्रयास किया है। समकालीन महिला साहित्यकारों मे नारी के जीवन यथार्थ और स्त्री पर हो रहे सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक, धार्मिक शोषण को दर्शाने का प्रयास किया है। इनमंे मृणाल पाण्डे, मैत्रेयी पुष्पा, कात्यायनी , प्रभा खेतान, रोहिणी अग्रवाल, क्षमा शर्मा, तसलीमा नसरीन, अलका सारावगी आदि प्रमुख विमर्शकार है।

मृणाल पाण्डे की 'परिधि पर स्त्री' 'स्त्री देह की राजनीति से देश की राजनीति तक' इन रचनाओं में स्त्रियों की स्थिति का वर्णन किया है। ' परिधि पर स्त्री' रचना में लेखिका ने शोषित प्रताड़ित, ग्रामीण, शहरी, कामकाजी महिलाओं के दुःख दर्द को प्रभावशाली ढंग से व्यक्त किया है। इस पुस्तक में मृणाल पाण्डे ने गरीबी , महिला वोटर, असमानता , पुलिस और लोकतन्त्र, भँवरी देवी, महिला शरणार्थी, नारीवाद, आबादी नियन्त्रण, आत्मनिर्भरता और सहकारिता जैसे विषयों पर केन्द्रित हैं।

'कात्यायनी' एक पत्रकार है। कात्यायनी के पास व्यंग्य करने का एक अच्छा हुनर है। कात्यायनी का उपन्यास 'दुर्ग द्वार पर दस्तक' में इन्होंने लिंग परिप्रेक्ष्य को विश्वबैंक का प्रपंच माना है। कात्यायनी स्त्री के श्रम और शोषण को केन्द्र में लाती हैं। मुक्त बाजार में स्त्री का शोषण हो रहा है तो कहीं वह आजाद भी हो रही है।

कात्यायनी कहती हैं,''सामन्तवाद के युग तक स्त्रियों को संपत्ति के अधिकार सहित कोई भी सामाजिक, राजनीतिक अधिकार प्राप्त नहीं था और उनकी इस सामाजिक पारिवारिक मातहती स्थिति को धर्म, कानून और सामाजिक विधानों की स्वीकृति प्राप्त थी। सामन्तवाद के गर्भ में जब पँूजीवाद का भ्रूण विकसित हो रहा था, उसी समय से सामाजिक उत्पादन में स्त्रियों की भागीदारी शुरू होकर बढ़ती चली गई। यही वह भौतिक आधार था जिसमें पहली बार स्त्रियों के भीतर सामाजिक अधिकारों की चेतना को जन्म दिया।' ' 61

कात्यायनी बहुराष्ट्रीय कम्पनियों के आगमन और भूमंडलीकरण के समय को स्त्री के पक्ष में नहीं पाती विश्व बैंक को तीसरी दुनिया के खिलाफ पाती है।

'प्रभा खेतान' के साहित्य में स्त्री यंत्रणा को आसानी से देखा जा सकता है। प्रभा खेतान ने उद्योग और व्यापार जगत से जुडे अपने अनुभवों को भी अपने लेखन में ढाला है। प्रभा खेतान का 'उपनिवेश में स्त्री मुक्ति-कामना की दस वार्ताएँ ' स्त्रीवाद पर आधारित पुस्तक है। इसमें इन्होंने नव उपनिवेशवाद , भूमंडलीकरण, संस्कृतिवाद के छल-कपट और स्त्री का मानस, नारीवाद, ज्ञान मीमांसा के उद्देश्य , स्त्रीत्व का सारतत्व, यौनिकता की राजनीति, क्रान्ति-चेतना के नारी रूप, भाषा और विमर्श का संजाल के द्वारा दार्शनिक विचारधाराओं के सहारे स्त्री प्रश्नों पर बात करना चाहा है।

प्रभा खेतान कहती हैं कि ‘‘समाज मंे नारीवादी बौद्धिकता की भी एक विशिष्ट भूमिका है। इस नई स्त्री को पहचान मिल चुकी है, वह हर कहीं , हर जगह नजर आती है। हर जाति और वर्ग में ऐसी स्त्रियाँ सक्रिय हैं। व्यक्ति होने के नाते उनमें प्रतिनिधित्व की क्षमता है। अपना मत-अमत जाहिर करने की भाषा उनके पास है। आज स्त्री ने सदियों की खामोशी तोडी है।’ ’ 62

‘‘चित्रा मुदगल’ ’ अपने उपन्यास ‘आवाँ ’में पुरुष मानसिकता को अनावृत करने के साथ- साथ स्त्री की कंडीशनिंग से लड़ने की जरूरत पर बल देती हुई उपन्यास को स्त्री के कोण से कमजोर नहीं करती बल्कि लड़ाई की जमीन तैयार करती हैं और ‘आवाँ’ को स्त्री विमर्श के लिए आधार प्रदान करती हंै।

‘अलका सारावगी’ का महत्त्वपूर्ण उपन्यास ‘कलिकथा-वाया बाईपास’ है। ‘‘इस उपन्यास में किशोर बाबू भी पितृसत्ताक हैं- अपनी विधवा माँ और भाभी से स्नेह तो करते हंै पर उन्हें देहरी के बाहर जाने नहीं देते, बेटियों को ज्यादा पढ़ाते नहीं और जल्दी उनकी शादी कर देते हैं, घर ओर गाड़ी की तरह पत्नी और बेटे को लगातार झाड़-झुड़कर दुरूस्त किए रहते हैं, कभी किसी की बात नहीं मानते।’ ’ 63

‘तसलीमा नसरीन’ ऐसी लेखिका हैं जो अपने विवादास्पद लेखन से केवल बांग्लादेश में ही नहीं बल्कि भारतीय महाद्वीप में भी जानी जाती हंै। ये मानती हंै कि स्त्रियाँ प्रायः दासियों के रूप में देखी जाती थी और पुरुष मालिकों के रूप धार्मिक आचार व्यवहार भी पुरुषों के पक्ष में था और आज भी है।

‘रोहिणी अग्रवाल’ ने अपनी स्त्री-विमर्श की पुस्तक ‘स्त्री लेखन-स्वप्न और संकल्प’ पुस्तक को स्त्री के नजरिए से स्त्री-लेखन का पाठ कहा है। रोहिणी अग्रवाल

कहती हैं कि ‘‘स्त्री विमर्श का अर्थ स्त्री के पक्ष में खडे होकर लंैगिक विभाजन को मजबूत करना नहीं है, लंैगिक विभाजनों से आक्रांत मनुष्य की मुक्ति की साझा लड़ाई है- सृजन की महागाथा।’ ’ 64

‘क्षमा शर्मा’ की स्त्री विमर्श की पुस्तक ‘स्त्रीत्ववादी विमर्श: समाज और साहित्य’ है। स्त्रीत्ववादी विमर्श समग्र आर्थिक, राजनैतिक, सामाजिक, भाषिक और सांस्कृतिक विमर्श है। ये मुस्लिम औरतों, पत्रकारिता, पंचायत विज्ञापन, स्त्री छवि के प्रश्नों को भी केन्द्र में लाती है। अपने आस-पास उठ खड़े हुए दैनिक प्रश्न और उन पर सजग स्त्री की प्रतिक्रियाएँ यहाँ देखी जा सकती हैं।

‘अनामिका’ समकालीन हिन्दी रचना के क्षेत्र में एक संवेदनशील एवं सामाजिक यथार्थ से जुड़ी हुई रचनाकार हैं। अनामिका सिर्फ कविता में ही नहीं बल्कि अपने सम्पूर्ण लेखन में स्त्री दृष्टि की उदार प्रवक्ता बनकर उभरी हैं। अनामिका हमेशा इस बृहत्तर समाज की गति एवं विडम्बनाओं को एक स्त्री की आँखों से देखने और परखने की कोशिश करती हैं। इनकी रचनाओं मे वात्सल्य है, क्रोध है और आक्रोश भी है। इनकी कविताओं में प्रेम दोस्ती नारी की पीड़ा उसकी इच्छाओं, और आकाक्षाओं को बहुत जगह मिली है।

अनामिका एक उपन्यासकार, विमर्शकार और आलोचक भी हैं। इन्होंने अपने उपन्यासों में स्त्री के मुक्ति संघर्ष को दर्शाने के साथ-साथ अपनी आलोचनाओं में स्त्रीवाद के विभिन्न रूपों और स्त्री आन्दोलनों पर समीक्षात्मक पुस्तक लिखी है। अनामिका की रचनाओं में स्त्री के सभी रूपों को देख सकते हंै। समकालीन महिला लेखिकाओं में इनका स्थान विशिष्ट माना जाता है।

3.6 भाषा और स्त्री

साहित्य और भाषा में गहरा संबंध होता है। भावों की अभिव्यक्ति का सशक्त माध्यम भाषा है। भाषा के द्वारा ही रचनाकार अपने विचारों को मूल रूप प्रदान करता है। भाषा के माध्यम से ही वह अपनी प्रतिभा, कल्पना, अनुभूति एव आदर्श को अभिव्यक्त करता है। चित्र जिस प्रकार स्वयं बोलता है, उसी प्रकार भाषा खुद विवरण और अर्थ बन जाती है। भाषा के संदर्भ में अनामिका कहती हैं कि ‘‘हमारे दो होंठ है, दोनों मिलते हैं, एक लय में गतिशील होते हैं, तो भाषा बनती है। एक हिले, दूसरा स्पन्दित ही न हो, तो भाषा का सृजन असम्भव होगा। भाषा का सार है सम्वाद, भाषण नहीं। दोनों होठों की अस्मिता बरकरार रखने का नाम है भाषा। भाषा अपनी पूर्णता में किसी तरह की एकांगिता बर्दाश्त नहीं करती, और इसलिए हर तरह की अन्यायपूर्ण एकांगिता के भास्वर विरोध का हथियार बनती है। भाषा को व्यक्ति के अधीनीकरण के सांस्कृतिक षड्यन्त्र का हथियार जब-जब बनाया गया, भाषा गवाह है कि उसे निरस्त करने के हथियार भी उसी से निकले।’ ’ 65

साहित्यकार के पास एक निश्चित कथा होती है। उसका संयोजित और विकसित कथानक होता है, पात्र होते हैं और एक निश्चित दृष्टिकोण होता है, उसकी प्रमुख समस्या होती है, उसे प्रस्तुत करने के लिए प्रत्येक साहित्यकार शिल्प-विधि और भाषा का चयन कथा वस्तु के अनुरूप करता है। सन् 1960 के बाद अमेरिका में स्त्रीवाद का प्रचार-प्रसार हुआ। पहले मातृसत्तात्मक परिवार व्यवस्था थी इसके पश्चात् जब परिवार व्यवस्था पितृसत्ता में परिवर्तित हो गई तो सब कुछ उल्टा हो गया। इस संदर्भ में एंगेल्स ने कहा है कि- ‘‘मातृसत्तात्मक से पितृसत्तात्मक का अवतरण वास्तव में औरत जाति की सबसे बड़ी हार थी। सत्य तो यह है कि स्त्री के लिए ऐसा स्वर्ण युग

वास्तव में एक मिथक के आलावा कुछ नहीं है। यह कहना है कि औरत अन्या है, इस बात को सिद्ध करता है, स्त्री और पुरूष में कोई पारस्परिक संबंध नहीं था। वह चाहे धरती थी, चाहे माता, चाहे देवी, किंतु पुरुष की संगी-मित्र कभी नहीं थी। उनमें पारस्परिक साझेदारी का भाव नहीं था।’ ’ 66

पुरुष हमेशा स्त्री को अपनी सम्पत्ति समझता है। कुछ पुरुषवादी सोच रखने वाले लोगों को यह असंगत लगता था कि स्त्रियाँ भी लिख रही हं ै। प्राचीन काल से लेखन परम्परा पुरुषों के अधिकार में रही है। भारतीय सौन्दर्य शास्त्र में स्त्री के धैर्य और सहिष्णुताधर्मी मौन को ही उसका सौंदर्य कहा है। चुप्पी ही स्त्री का सबसे महान गुण समझा जाता है कहा जाता है कि बोलती तो सिर्फ दूसरे, तीसरे दर्जे की स्त्रियाँ हैं जिनका चुप्पी साधने से काम नहीं चलता। प्राचीन समय में स्त्रियों के बोलने पर अनेक मत थे। अनामिका उस समय की स्थिति को व्यक्त करते हुए कहती हैं कि ‘‘पद्मिनी नायिकाओं को बोलने की क्या जरूरत! भट्टिनी को बोलने की क्या जरूरत! बोलती हैं निउनियाएँ, प्रौढ़ाएँ, वेश्याएँ, विषकन्याएँ, रण चण्डियाँ और दासियाँ, जिन बेचारियों का बोले बिना काम नहीं चलता। धारदार-उसमें लोकजीवन अपनी पूरी उर्जस्विता और बाँकपन के साथ, अपने सब रंगों में सहज उजागर होता है।’ ’ 67

स्त्री संबंधी लेखन को किस तरह परिभाषित किया जाएगा ? स्त्री संबंधी लेखन क्या सिर्फ स्त्रियों द्वारा ही लिखा जाना चाहिए ? समाज और परिवार का विकास स्त्री और पुरुष के संयोग से ही होता है। लिंग के आधार पर लेखन को नहीं देखना चाहिए। साहित्य लेखन के संदर्भ में ‘‘जब लेखक कलम उठाकर अपने लिखने का धर्म निभाता है, तब वह केवल लेखक होता है, स्त्री-पुरूष के शरीर से परे धर्म, समाज और परिवार से ऊपर उठ जाता है, जो उठ नहीं पाता कभी लेखक नहीं हो सकता।’ ’ 68

लेखक केवल लेखक होता है स्त्री-पुरूष नहीं होता । अनामिका कहती हैं कि स्त्रीत्व लेखन पर आरोप है कि यह संकुचित, गंभीर, अत्यधिक अकादमिक, झगड़ालू होती हैं। स्त्रियाँ अपनी मांग अपने विचारों को किस भाषा के माध्यम से अभिव्यक्त करें समाज में स्त्रियों के प्रति नकारात्मक भाव फैला हुआ है। अनामिका भाषा की शैली को समझाते हुए कहती हैं '' 'मैं' और 'मेरा' स्त्री लेखन के बीजाक्षर हैं, पर स्त्री-लेखन आत्मालाप नहीं है। यहाँ 'मैं' और 'मेरे' का जो परिविस्तार है, उसमें निरवाधि निस्सीमता है जो सबसे जुड़कर भी सबसे अलग है, अकेली है और अकेली रहना चाहती है। 'पंथ रहने दो अपरिचित, प्राण रहने दो अकेला जान लो यह मिलन एकाकी विरह में है दुकेला।' स्त्री की क्या, यह तो मानव मात्र की नियति है। फिर भी समायोजन के यत्न होते तो है और होने भी चाहिए और भाषा ही वह पुल है जो जोड़ता है या जोड़ सकता है। देह की, आँखों की, अच्छी-बुरी स्मृतियों की अलग-अलग भाषाएँ तो स्त्री-पुरुष नहीं बोलते, उनका निहितार्थ एक ही होता है, कहने का ढंग बेशक अलग-अलग हो।' ' 69

अनामिका मानती हंै कि स्त्री-पुरूषों की समझ की शैली भिन्न होती है परंतु उनका अर्थ एक ही होता है। कहीं अनामिका भाषा रूपी पत्थर को तोड़कर अलग रास्ता बनाने की बात कर रही हैं। गाँधी जी ने भी स्त्री की महत्ता को स्वीकार करते हुए कहा था - ''शक्ति का अर्थ यदि पशु-बल है, तब तो पुरूष अवश्य अधिक शक्तिमान है लेकिन अगर इसका अभिप्राय मानसिक-नैतिक बल भी है तो स्त्रियाँ पुरुषों से उन्नीस नहीं।' ' 70

अनामिका ने कविताएँ, उपन्यास, कहानियाँ, विमर्श तथा समाचार पत्रों में स्तम्भ लिखती हैं। इनकी भाषा कहीं भी उग्र या तीव्र नहीं होती है। अनामिका की भाषा-शैली में महानगरीय भाषा, लोक भाषा, पाश्चात्य भाषा आदि भाषाओं का समोवश है। अनामिका

कहती हंै कि पुरूषों में बचपना है, उन्हें माफ कर देना ही उचित है। अनामिका की रचनाओं में स्त्री के सभी रूपों का वर्णन है- माँ, पत्नी, बेटी, स्त्री, वृद्धाएँ आदि। इनकी रचनाओं में घर के प्रति मोह, शोषण का विरोध, स्त्री-मुक्ति की चेतना आदि सभी का समावेश है। अनामिका कहती हैं कि स्त्रियों को मुक्ति आँसुओं से नहीं बल्कि एक रणनीति तैयार करके करनी होगी। अनामिका अपनी रचनाओं में यह नहीं कहती कि स्त्री को पुरुष से मुक्ति चाहिए। स्त्री पुरूष की नहीं बल्कि पितृसत्ता की विरोधी है। पुरुषवादी समाज में वे स्त्री की छवि को उभारने का काम करती हैं। अनामिका कहती हैं- ‘‘साहित्य में सब छन रहा है- और एक अलग ही भाषा में क्योंकि स्त्रियों का अनुभूति मंडल ही अलग नहीं होता, उसकी भाषा का मिजाज भी कुछ अलग होता है। उसके मनोसामाजिक कंस्ट्रक्ट अलग होते हैं। इतिहास, मिथक और आत्मरक्षा के सम्मिश्रण से कथा-साहित्य में नया स्पेस सृजित हो रहा है।’ ’ 71

पुरुष वर्चस्व से मुक्ति की कामना प्रत्येक स्त्री चाहती है समाज में आज भी ऐसी महिलाएँ है जिन्हें बोलने की आजादी नहीं है। पुरूष की हाँ में हाँ और ना में ना रहती है। अनामिका मानती हैं कि स्त्रीवादी लेखन को फैलने की आवश्यकता है। इसमें अनेक चुनौतियाँ सामने आती हैं-सबसे महत्वपूर्ण मध्यवर्गीय चरित्र है मध्यवर्गीय समाज में स्त्रियाँ अधिक बंधन में रहती है। पितृसत्ता के दमन चक्र को कम करने के लिए स्त्रीवादी लेखन को बढ़ाने की आवश्यकता है। स्त्री भाषा या स्त्रीवादी भाषा की जरूरत है जिससे स्त्रियाँ अपने दुःख दर्द बाँट सकेंगी। स्त्री-भाषा में सभी रंगों का समावेश है इसमें संवेग, प्रज्ञा, विवेक और बुद्धि सभी रूप विद्यमान हैं।

स्त्री-भाषा या स्त्रीवादी भाषा के मुख्य अवदान के रूप में अनामिका दो बिन्दुओं को प्रस्तुत करती हैं-

1. जिस तरह अच्छी कविता इंद्रियों का पदानुक्रम नहीं मानती-दिल-दिमाग और देह को एक ही धरातल पर अवस्थित करती हुई ध्रुवांतों का एक-दूसरे के घर आना-जाना कायम रखती है, स्त्री भाषा पर्सनल-पोलिटिकल, काॅस्मिक-काॅमनप्लेस, सेक्रेड प्रोफेन, रैशनल-सुप्ररेशनल के बीच का पदानुक्रम तोड़ती हुई उद्देश्य स्थान-विधेय स्थान के बीच म्यूजिकल चेयर का सा खेल आयोजित करती है जिससे की 'बहिरों सुनें मूक पुनि बोले/अन्धों को सब कुछ दरसाई' का सही प्रजातांत्रिक महोत्सव घटित होता है।

2. स्त्री-भाषा ने आधुनिकता का कुल्लापन झाड़कर उसके तीनों प्रमेयों का दायरा बड़ा कर दिया है- शुष्क तार्किकता का स्थानापन्न वहाँ है, सरस परा तार्किकता, परा-तार्किकता जो बुद्धि को भाव से समृद्ध करती है।' ' 72

अनामिका मानती हैं कि पितृसत्तात्मक भाषिक प्रयोगों के लिए सामान्य भाषा नहीं बल्कि स्त्रीवादी भाषा की सख्त जरूरत है। बहुलतावादी संास्कृतिक दौर में नारी लेखन के संबंध में अनामिका कहती हैं ''सहना लड़ाई का हिस्सा है। कलम दुनिया का सबसे पैना हथियार है। शब्दों के सहारे, शब्दों के माध्यम से माहौल में सक्रिय विचारों और मूल्यों पर टिप्पणी करना रचना का आवश्यक कर्म है। स्त्रियों का लिखना वास्तव में इसी लड़ाई का, इसी कर्म का जरूरी हिस्सा है। आप देखिए कि स्त्रियों का जो लेखन है वह 'संवादपरक है वहाँ परस्पर बहस और संवाद की बहुत संभावनाएँ है। यह एक मनोवैज्ञानिक लड़ाई है तो पुरुषों और पुरुष विशेष के विरूद्ध न समझ कर पितृसत्ता के खिलाफ समझना चाहिए।' ' 73

'स्त्रीत्व का मानचित्र' में अनामिका ने भारतीय संस्कृति, भारतीय देवियाँ, पश्चिमी दार्शनिक निकाय, स्त्रीवादी आन्दोलन , स्त्री और भाषा , आर्ष ग्रन्थों की उदात्त भूमि से लोक जीवन की दयनीय भूमि तक की स्त्री का साहित्याध्ययन की चुनौतियों के माध्यम से स्त्री प्रश्नों पर अनेक तरह से विचार करती हैं।

संदर्भ

तृतीय अध्याय

1. सुनीता सृष्टि, लेख: स्त्री विमर्श: एक अंतर्यात्रा, अनामिका: एक मूल्यांकन, अभिषेक कश्यप, सामयिक बुक्स, नयी दिल्ली, प्र. सं. 2013, पृ. सं. 331
2. क्षमा शर्मा, स्त्रीत्ववादी विमर्श: समाज और साहित्य, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, प्र. सं. 2002, द्वि. आवृति 2012, पृ. सं. 121
3. अनामिका, स्त्रीत्व का मानचित्र, सारांश प्रकाशन प्रा. लि., दिल्ली, प्र.सं. 1999, पृ.सं. 11
4. ज्ञानेन्द्र रावत, औरत: अस्मिता और यथार्थ, कान्ती बुक सैन्टर, दिल्ली, प्र. सं. 2006, पृ. सं. 286
5. अनामिका, स्त्रीत्व का मानचित्र, सारांश प्रकाशन प्रा.लि., दिल्ली, प्र.सं. 1999, पृ.सं. 26
6. वही
7. वही
8. वही, पृ.सं. 27
9. वही
10. वही

11. वही, पृ.सं. 29-30

12. वही, पृ.सं. 30

13. वही, पृ.सं. 31

14. वही

15. कुमकुम संगारी, मीराबाई और भक्ति की आध्यात्मिक अर्थनीति , वाणी प्रकाशन, प्र.सं 2012, द्वि आवृति 2016, पृ.सं. 8

16. रोहिणी अग्रवाल, स्त्री लेखन: स्वप्न और संकल्प, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, प्र.सं. 2011, पृ.सं. 16

17. अनामिका, स्त्रीत्व का मानचित्र, सारांश प्रकाशन, दिल्ली प्र.सं. 1999, पृ.सं. 120

18. ूूूण्मदंहतपाण्बवउ

19. अनामिका, स्त्रीत्व का मानचित्र, सारांश प्रकाशन, दिल्ली, प्र.सं.1999, पृ.सं. 35

20. वही, पृ.सं. 39

21. वही, पृ.सं. 36

22. वही

23. क्षमा शर्मा, स्त्रीत्ववादी विमर्श, समाज और साहित्य, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, प्र.सं. 2002, द्वि. आ. 2012, पृ.सं. 56

24. अनामिका, स्त्रीत्व का मानचित्र, सारांश प्रकाशन, दिल्ली, प्र.सं. 1999, पृ.सं. 37

25. महादेवी वर्मा, श्रृंखला की कड़ियाँ, लोक भारती प्रकाशन, इलाहाबाद, प्र. सं. 2008, पृ.सं. 75

26. समकालीन भारतीय साहित्य, साहित्य अकादमी, नवम्बर-दिसम्बर-2012, अंक-164, पृ.सं. 34

27. अनामिका, स्त्रीत्व का मानचित्र, सारांश प्रकाशन, दिल्ली, प्र. सं. 1999, पृ.सं. 41

28. वही, पृ.सं. 39

29. वही, पृ.सं. 18

30. वही

31. वही, पृ.सं. 19

32. प्रभा खेतान, उपनिवेश में स्त्री मुक्ति कामना की दस वार्ताएँ, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, प्र. सं. 2003, ती. आ. 2010, पृ.सं. 12

33. डाॅ. जैनेन्द्र यादव, नारी सशक्तिकरण: दशा एवं दिशा, ट्राईडैंट पब्लिशर्स, कश्मीरी गेट, दिल्ली, प्र. सं. 2013, पृ.सं. 29

34. वही, पृ.सं. 31

35. अनामिका, स्त्रीत्व का मानचित्र, सारांश प्रकाशन, दिल्ली, प्र, सं. 1999, पृ.सं. 42-43

36. वही, पृ.सं. 43

37. वही, पृ.सं. 44

38. वही

39. वही, पृ.सं. 45

40. वही, पृ.सं. 46

41. डाॅ. जैनेन्द्र यादव, नारी सशक्तिकरण: दशा एवं दिशा, ट्राईडैंट पब्लिशर्स, कश्मीरी गेट, दिल्ली, प्र.सं. 2013, पृ.सं. 38

42. प्रभा खेतान, उपनिवेश में स्त्री-मुक्ति कामना की दस वार्ताएँ, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, प्र.सं. 2003, ती.आ. 2010 पृ.सं. 176

43. वही, पृ.सं. 185

44. डाॅ. जैनेन्द्र यादव, नारी सशक्तिकरण: दशा एवं दिशा, ट्राइडैंट पब्लिशर्स, कश्मीरी गेट, दिल्ली, प्र.सं. 2013, पृ.सं. 35

45. प्रभा खेतान, उपनिवेश में स्त्री-मुक्ति कामना की दस वार्ताएँ, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, प्र. सं. 2003, ती.आ. 2010, पृ.सं. 187

46. अनामिका, स्त्रीत्व का मानचित्र, सारांश प्रकाशन, दिल्ली, प्र. सं. 1999, पृ.सं. 47

47. वही, पृ.सं. 48

48. वही, पृ.सं. 50

49. वही

50. वही, पृ.सं. 68

51. डाॅ. संजय गर्ग, स्त्री विमर्श का कालजयी इतिहास, सामयिक प्रकाशन, नई दिल्ली, प्र. सं. 2012, पृ.सं. 142

52. अनामिका, स्त्रीत्व का मानचित्र, सारांश प्रकाशन, दिल्ली, प्र.सं. 1999, पृ.सं. 152

53. डाॅ. संजय गर्ग, स्त्री विमर्श का कालजयी इतिहास, सामयिक प्रकाशन, नई दिल्ली, प्र. सं. 2012, पृ.सं. 147

54. महादेवी वर्मा, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, प्र. सं. 2008, पृ.सं. 92-93

55. अनामिका, स्त्रीत्व का मानचित्र, सारांश प्रकाशन, दिल्ली, प्र. सं. 1999, पृ.सं. 126

56. सुमन राजे, हिन्दी साहित्य का आधा इतिहास, भारतीय ज्ञानपीठ, नई दिल्ली, पाँचवा सं. 2015, पृ.सं. 89

57. वही, पृ.सं. 23

58. अनामिका, स्त्रीत्व का मानचित्र, सारांश प्रकाशन, दिल्ली, पृ. सं. 1999, पृ.सं. 130

59. वही, पृ.सं. 54

60. वही, पृ.सं. 61

61. कात्यायनी, दुर्ग द्वार पर दस्तक, परिकल्पना प्रकाशन, लखनऊ, प्र. सं. 2004, पृ.सं. 93

62. प्रभा खेतान, उपनिवेश में स्त्री-मुक्ति कामना की दस वार्ताएँ, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, प्र. सं. 2003, ती. आ. 2010, पृ.सं. 62

63. अनामिका, स्त्रीत्व का मानचित्र, सारांश प्रकाशन, दिल्ली, प्र.सं. 1999, पृ.सं. 203

64. रोहिणी अग्रवाल, स्त्री लेखन: स्वप्न और संकल्प, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, प्र. सं. 2011, पृ.सं. 7

65. अनामिका, स्त्रीत्व का मानचित्र, सारांश प्रकाशन, दिल्ली, प्र. सं. 1999, पृ.सं. 163

66. सुमित पी.वी, लेख: स्त्रीवादी भाषिक परिप्रेक्ष्य में अनामिका का साहित्य, अनामिका: एक मूल्यांकन, अभिषेक कश्यप, सामयिक बुक्स, नई दिल्ली, प्र.सं. 2013, पृ.सं. 373

67. अनामिका, स्त्रीत्व का मानचित्र, सारांश प्रकाशन, दिल्ली, प्र.सं. 1999, पृ.सं. 164

68. सुमित पी.वी, लेख: स्त्रीवादी भाषिक परिप्रेक्ष्य में अनामिका का साहित्य, अनामिका: एक मूल्यांकन, अभिषेक कश्यप, सामयिक बुक्स, प्र. सं. 2013, पृ.सं. 375

69. अनामिका, स्त्रीत्व का मानचित्र, सारांश प्रकाशन, दिल्ली, प्र. सं. 1999, पृ.सं. 166-167

70. वही, पृ.सं. 167-168

71. अनामिका, पानी जो पत्थर पीता है, प्रकाशन संस्थान, दिल्ली, प्र.सं. 2005, पृ.सं. 20

72. सुमित पी.वी, लेख: स्त्रीवादी भाषिक परिप्रेक्ष्य में अनामिका का साहित्य, अनामिका:एक मूल्यांकन, अभिषेक कश्यप, सामयिक बुक्स, प्र. स. 2013, पृ.सं. 385

73. अनामिका, लेख: साहित्यिक विमर्श बनाम स्त्री विमर्श, आजकल, मार्च-2016, सं. फरहत परवीन, अंक - प्प् , पृ.सं. 36

उपसंहार

अनामिका समकालीन रचनाकारों में ऐसी रचनाकार हंै जो स्त्री-मुक्ति की कामना करते हुए लिखती हैं- स्त्री सिर्फ पत्नी या प्रेमिका नहीं है, वह माँ, बहन, बेटी व सखा भी है। इनकी लेखन दृष्टि नई और अद्भुत है। इनकी भाषा में माधुर्य-भाव अधिक है। अनामिका अपने हर पात्र के साथ किसी न किसी प्रकार का स्नेहपूर्ण रिश्ता बना लेती हंै। इनके मन में घर, गृहस्थी परिवार के प्रति अपरिमित आस्था है। अनामिका मानती हैं- सीधी सादी गृहस्थी भी एक तपस्या है। जब अहं हावी होने लगता है तो सुखी गृहस्थी भी जंजाल बन जाती है। अनामिका स्त्री मुक्ति को साझा चूल्हा कहती हैं।

भारतीय समाज में नारी की स्थिति बहुत ही दयनीय है। नारी सदियों से अपने अस्तित्व की अस्मिता की तलाश में है। भारतीय संस्कृति में नारी की पूजा की जाती है।

'यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवता' कहने वाली भारतीय संस्कृति में नारी की स्थिति सदैव गौरवमयी रही है। जहाँ एक तरफ नारी को पूजा जाता है वहीं दूसरी तरफ नारी का शोषण होता है। उसके प्रति अनादर की भावना रखी जाती है। प्राचीनकाल में नारी का शोषण कम होता था। पितृसत्तात्मक समाज में कन्या के जन्म को अभिशाप माना जाता था। मध्यकाल में अशिक्षा, बाल विवाह, सती प्रथा, विधवा विवाह न होना आदि अनेक प्रथाएँ प्रचलित थी।

स्त्री मुक्ति के इतिहास पर नजर डालें तो पता चलता है कि जो स्थिति आज के समाज में देखी जा सकती है, जितनी स्वतंत्रता आज प्राप्त है इसके पीछे स्त्रियों का लम्बा संघर्ष विद्यमान है। समाज के विभिन्न क्षेत्रों में स्त्रियों ने न केवल पुरुष सत्ता की यातनाओं को झेला है बल्कि अलग-अलग प्रकार के अत्याचारों तथा शोषण की

मर्मांतक पीड़ा को भी सहन किया है। बहुत सी स्त्रियाँ जो मेधावी थी उन्होंने भारत के स्वतंत्रता आंदोलन में भी अभूतपूर्व नेतृत्व प्रदान करके अपनी क्षमता का भलीभांति परिचय दिया और यह सिद्ध कर दिया कि स्त्री किसी भी क्षेत्र में पुरुष से कम नहीं है।

आधुनिक युग में स्त्री को शिक्षा ग्रहण करने की स्वतंत्रता मिली है परंतु पूर्ण रूप से स्वतंत्रता नहीं मिली है। अभी संसार के अनेक क्षेत्र ऐसे हैं जिनमें स्त्रियों को सामान्य अधिकार नहीं मिल पाए हैं और बहुत कुछ होना बाकी है ताकि स्त्री पुरूष के बराबर आ सके।

वर्तमान में स्त्री शिक्षित होकर भी परम्परागत रूढ़ियों और रीति-रिवाजों में जकड़ी हुई है। पंूजीवादी समाज में नारी मुनाफा कमाने का माध्यम बन गई है। विज्ञापन में नारी की स्थिति दयनीय है। भूमंडलीकरण और बाजारवाद के कारण संपूर्ण देश ने एक मंडी का रूप ले लिया है। अनामिका का मानना है कि भूमंडलीकृत समय में स्त्रियों को गाँधीवादी एवं अहिंसक मार्ग अपनाकर एक नई जंग छेड़नी होगी।

अनामिका स्त्री-आंदोलन को धनी महिलाओं का कोरा वाग्विलास भर नहीं मानती हंै। स्त्री मुक्ति आंदोलन केवल लेखन में न होकर यह मुक्ति संघर्ष आंदोलन के रूप में भारत में छिड़ा है। स्त्री-आंदोलन पश्चिम की देन माना जाता है, जिससे आकर्षित होकर प्रत्येक महिला मुक्ति की कामना करने लगी। भारत में स्त्री मुक्ति के लिए अनेक आंदोलन हुए हैं। दहेज विरोधी संगठन, सती प्रथा पर रोक, विधवा पुनर्विवाह, स्त्री मुक्ति संगठन भारतीय महिला परिषद् आदि आंदोलन चलाए गए। स्त्री को स्वतंत्र कराने और समानता का अधिकार दिलाने के लिए अनेक नियम कानून तो बनाए गए हैं। फिर भी प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से घर, परिवार और समाज मंे पुरुष का ही वर्चस्व

है। वर्षों से स्त्री पुरुषवादी सोच से मुक्त होना चाहती है परन्तु हो नहीं पा रही है क्योंकि पितृसत्तात्मकता का इतिहास वर्षाे पुराना है।

अनामिका के स्त्री विमर्श को स्त्री सामथ्र्य का आख्यान भी कहा जाता है। अनामिका स्त्री के हर रूप एवं पहलू पर विचार-विमर्श और चिन्तन मनन के पश्चात स्त्री-विमर्श के एक निर्णयात्मक बिन्दु पर पहुँची हैं। अनामिका की आलोचना दृष्टि बहुत उम्दा मानी जाती है। 'स्त्रीत्व का मानचित्र' मंे अनामिका एक प्रकरण पर मानों छलांग लगाकर पहँुच जाती हैं।

अनामिका मे पास विश्व साहित्य की समझ है वे अंग्रेजी भाषा की प्रोफेसर हैं, इन्हंे हिन्दी के साथ-साथ संस्कृत के ग्रन्थांे की भी विशद जानकारी है। अनामिका 'स्त्रीत्व का मानचित्र' में भारतीय संस्कृति, वेद,पुराण, पाश्चात्य स्त्रीवाद, स्त्री और भाषा , स्त्रीवादी आन्दोलनों का वर्णन किया है।

अनामिका ने उदारवादी स्त्रीवाद, रैडिकल, माक्र्सवादी, समाजवादी, उत्तर-आधुनिकतावादी स्त्रीवाद का वर्णन किया है। अनामिका अपनी बात कहने के लिए उदारवादी दृष्टिकोण अपनाती हैं। पुरुषवादी सोच से मुक्ति की कामना प्रत्येक स्त्री चाहती है। आज स्त्री जागरुक होने लगी है। अनामिका की रचनाओं में स्त्री की जागरूकता की चिनगारियाँ हम देख सकते हंै।

स्त्री मुक्ति सबसे कठिन सवाल है। यह बहुत जल्दी हल नहीं हो सकता क्योंकि इसकी जड़े बहुत गहरी हैं। लम्बे संघर्ष तथा संकल्पों के साथ इससे टकराने की जरूरत है। स्त्री विमर्श को विश्रृंखलता से अलग करते हुए सृजनात्मक राह पर ले जाती है, वह राह जो व्यक्ति व समाज दोनांे के लिए कल्याणकारी हो।

अनामिका की रचनाओं में एक छोटी सी घटना, एक वैचारिक मनस्थिति का प्रेरक बनकर आती है। अनामिका की रचनाएँ स्त्री को नहीं बल्कि उसकी नियति, आशा-निराशा को सम्बोधित करती हैं। मानवाधिकार में स्त्री और पुरूष दोनों समान हैं। अनामिका मानती हैं कि स्त्री यदि घर बचाती है तो बाद में वह समाज को भी बचाती है।

अनामिका अपनी भाषा की विशिष्टता के कारण ही बिहार अंचल का भावबोध समेट पाने में सफल हो पायी हैं। इनकी भाषा में माधुर्यभाव अधिक है। बिहार के लोकजीवन मंे प्रयुक्त होने वाले शब्द घुल-मिल गए हैं। अपने परिवेश को पूरी संवेदनशीलता के साथ अपने अन्दर समेटे हुए हंै। समकालीन रचनाकारों में अनामिका की भाषा भिन्न एवं विशिष्ट है। अनामिका की भाषा में संयमता है। अनामिका जब रचनाएँ करती हैं तो उनमें सिर्फ इनकी आवाज ही नहीं बल्कि समाज के सभी लोगांे की आवाज मुखरित होती है।

अन्त में कहा जा सकता हैं कि अनामिका के साहित्य में प्राचीनता और आधुनिकता का अनूठा संगम है, इन्होंने समाज मंे व्यापत बुराइयों को दर्शाया है और उन्हें दूर करने के लिए प्रोत्साहित भी किया है। लेखिका ने प्राचीन से चली आ रही रूढ़िगत परम्पराओं को बदलने की भी प्रेरणा दी है। अनामिका अपनी रचना 'स्त्रीत्व का मानचित्र' में समाज की सच्ची तस्वीर प्रस्तुत करती हंै। अनामिका का रचनाकर्म स्त्रीवादी विमर्श के ढाचंे से वृहत परिधि की मांग करता है। 'स्त्रीत्व का मानचित्र' मंे प्रत्येक प्रकरणांे के बीच में दरारों को स्पष्ट देखा जा सकता है। ये दरारें शोध की नवीन दिशाओं की झलक दिखाती हंै। 'स्त्रीत्व का मानचित्र' के आलेखों को मिलाकर स्त्रीत्व का सम्पूर्ण मानचित्र खींचा जा सकता है। इस रूप से यह भावी शोध का विषय हो सकता है।